कबीर साखी-संग्रह

जिस में

कबीर साहेब की २१५२ अति कोमल और मनोहर साखियाँ कई पुस्तकों और फुटकर लिपियों से चुनकर बड़ी शुद्धता के साथ ८४ अंगों में छापी गई हैं।

[कोई साहेब विना इजाज़त के इस पुस्तक को नहीं छाप सकते]

इलाहाबाद
बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स में प्रकाशित हुई।
सन १९१२ ईस्वी

२०० पृष्ठ] [दाम ॥।)॥

Printed at the Belvedere Steam Printing Works, Allahabad, by E. Hall.

॥ संतबानी ॥

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जक्त-प्रसिद्ध म
त्माओं की बानी व उपदेश को जिन का लोप होता जाता है ब
लेने का है। अब तक जितनी बानियाँ हम ने छापी हैं उन में
विशेष तो पहिले छपी ही नहीं थीं और कोई २ जो छपी थीं तो
छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या छेपक त्रुटि और गलती से भरी
कि उन से पूरा लाभ नहीं उठ सकता था।

हम ने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ
हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकर शब्द जहाँ तक मिल सके असल
नक़ल कराके मँगवाये हैं और यह कार्रवाई बराबर जारी है। भर
तो पूरे ग्रंथ मँगा कर छापे जाते हैं और फुटकर शब्दों की हा
में सर्ब साधारन के उपकारक पद चुन लिये जाते हैं। कोई पु
बिना कई लिपियों का मुक़ाबला किये और ठीक रीति से शोधे
छापी जाती, ऐसा नहीं होता कि औरों के छापे हुए ग्रंथों की भ
बेसमझे और बेजाँचे छाप दी जाय। लिपि के शोधने में प्रायः उ
ग्रंथकार महात्मा के पंथ के जानकार अनुयायी से सहायता ली ज
है और शब्दों के चुनने में यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि वह
साधारन की रुचि के अनुसार और ऐसे मनोहर और हृदय-बेधक
जिन से आँख हटाने का जी न चाहे और अंतःकरन शुद्ध हो।

कई बरस से यह पुस्तक-माला छप रही है और जो जो क
जान पड़ती हैं वह आगे के लिये दूर की जाती हैं। कठिन और अ
शब्दों के अर्थ और संकेत नोट में दे दिये जाते हैं। जिन महात्मा
बानी है उन का जीवन-चरित्र भी साथ ही छापा जाता है और
भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उन के सं
वृत्तांत और कौतुक फुट-नोट में लिख दिये जाते हैं।

पाठक महाशियों की सेवा में प्रार्थना है कि इस पुस्तक-माला के
दोष उन की दृष्टि में आवें उन्हें हमको कृपा करके लिख भेजें जिस

निवेदन

कबीर साहेब के इस अनमोल ग्रंथ के छापने के लिये बहुत हमारी अभिलाषा और मित्रों का तगादा था पर अब तक उसव मसाला इकट्ठा न होने के कारन हम न छाप सके। चार बरस हुए बाबा* जुगलानंद कबीर-पंथी भारत-पथिक की एक पुस्तक लखन (संवत १९५५ के) छापे की मिली थी पर वह इतनी अशुद्धता और से भरी हुई थी कि जब तक और लिपि हाथ न आवै जिससे उ की शुद्धि की जावै, उससे पूरा मतलब नहीं निकल सकता था। फि हमको उससे बहुत मदद मिली जिसके लिये हम उक्त महाशय को धन्यवाद देते हैं। संत संग्रह के प्रथम भाग में भी कबीर [illegible]हेब की साखियाँ हैं जो यद्यपि संख्या में कम पर चुनी हुई और [illegible] शुद्धता के साथ छपी हैं, और थोड़े [illegible] हुए हमारे मित्र बाबू सरजूप्रसाद मुआफ़ीदार तेरही ज़िला बाँदा और साधू साहेबदास जी वेस्ट कोस्ट डेमरारा निवासी ने दो मोटी पुस्तकें कबीर साहेब के उत्तम साखियों और पदों की कृपा करके हमको भेजीं जिनसे साखियों के चुनने और बाबा जुगलानंद जी की पुस्तक की साखियों के शोधने में बहुत मदद मिली ॥

अनेक साखियाँ लखनऊ की छपी हुई पुस्तक और लिपियों में भी दो दो तीन तीन बार भिन्न भिन्न अंगों में दी हुई थीं इनको छाँट कर निकाल देने में बड़ा परिश्रम हुआ और फिर भी यह कहना कठिन है कि हमारी पुस्तक में कोई साखी भूल से दो बार नहीं छपी है। पर जहाँ तक बन सका इस पुस्तक में उत्तमोत्तम और शुद्ध साखियाँ रक्खी गईं

* पुस्तक में जुगलानंद जी के नाम के साथ "श्री" लगी है जिसे "बाबा" शब्द से बदल देने के लिये हम उनसे छिमा माँगते हैं, क्योंकि हमारी दृष्टि में संत मत अनुयायी के नाम पर "श्री" वैसी ही बेजोड़ दीखती है जैसे कोई हंस के सिर पर बाज़ की टोपी चमड़े की पहिना दे ॥

जो दोष रह गये हों उन्हें प्रेमी जन छिमा की दृष्टि से देखें और कृपा करके हमको जता दें जिसमें दूसरे छापे में वह ठीक कर दिये जायँ ॥

ल्लाओं लेने का विशेष छिन्न कि उर

कबीर साहेब का जीवन-चरित्र विस्तार के साथ उनकी शब्दावली [पह]ले भाग में दिया जा चुका है इसलिये यहाँ फिर छापने की [आव]श्यकता नहीं है ॥

इलाहाबाद,
[जन]वरी सन् १९१२

अधम--
एडिटर, संतबानी पुस्तक-माला ।

सूचीपत्र अंगों का

॥ भाग १ ॥

नाम अंगों के	संख्या साखियों की	पृष्ठ
गुरुदेव	१३९	१–१३
झूठे गुरू	२३	१३–१५
गुरुमुख	४	१५–१६
मनमुख	८	१६
निगुरा	११	१६–१७
गुरु शिष्य खोज	२९	१८–२०
सेवक और दास	२७	२०–२२
सूरमा	७६	२२–२९
पतिव्रता	३३	२९–३२
सती	७	३२–३३
विभिचारिन	११	३३–३४
भक्ति	३८	३४–३७
लव	१९	३८–३९
विरह	९१	३९–४७
प्रेम	७१	४७–५३
सतसंग	३५	५४–५६
कुसंग	१७	५७–५८
सूक्ष्म मार्ग	३८	५८–६१
चेतावनी	१९९	६१–७९
उदारता	९	८०
सहन	३	८१

नाम अंगों के	संख्या साखियों की	पृष्ठ
बिश्वास	१६	८१—८२
दुबिधा	९	८२—८३
मध्य	६	८३—८४
सहज	८	८४—८५
अनुभव ज्ञान	८	८५
बाचक ज्ञान	८	८६
करनी और कथनी	३२	८६—८९
सार गहनी	८	८९—९०
असार गहनी	८	९०
पारख	१३	९१—९२
अपारख	८	९२

जोड़ १०१२

॥ भाग २ ॥

नाम	५३	९३—९७
सुमिरन	६४	९७—१०३
शब्द	५१	१०३—१०७
बिनती	२९	१०८—११०
उपदेश	५८	११०—११५
सामर्थ	१६	११५—११७
निज करता का निर्णय	१८	११७—११८
घटमठ	११	११८—११९
सम दृष्टि	४	११९—१२०
भेदी	४	१२०
परिचय	७०	१२०—१२६
मौन	८	१२६—१२७
सजीवन	५	१२७

नाम अंगों के	संख्या साखियों की	पृष्ठ
मृतक	३६	१२७–१३०
साध	९९	१३१–१३९
भेष	७	१३९–१४०
वेहद्	९	१४०
असाधु	३२	१४१–१४३
गृहस्थ की रहनी	५	१४४
वैरागी की रहनी	५	१४४
अष्ट दोष वा विकारी अंग–		
१–काम	२०	१४५–१४६
२–क्रोध	९	१४६–१४७
३–लोभ	९	१४७–१४८
४–मोह	१०	१४८–१४९
५–मान और हँगता	२१	१४९–१५१
६–कपट	५	१५१
७–आशा	१३	१५१–१५२
८–तृष्णा	५	१५३
नव रत्न वा सकारी अंग–		
१–शील	८	१५३–१५४
२–क्षमा	९	१५४–१५५
३–संतोष	७	१५५
४–धीरज	६	१५५–१५६
५–दीनता...	१२	१५६–१५७
६–दया	५	१५७
७–साँच	२६	१५८–१६०
८–विचार...	१४	१६०–१६१
९–विवेक	१०	१६१–१६२
बुद्धि और कुबुद्धि	१३	१६२–१६३

नाम अंगों के	संख्या साखियों की	पृष्ठ
मन	७५	१६३–१७०
माया	३९	१७०–१७३
कनक और कामिनी	४८	१७३–१७७
निद्रा	१३	१७७–१७८
निन्दा	९	१७८–१७९
[अहार]		
स्वादिष्ट भोजन	४	१७९–१८०
मांस अहार	१६	१८०–१८१
नशा	८	१८१–१८२
सादा खान पान	४	१८२
आन देव की पूजा	७	१८२–१८३
मूरत पूजा	१७	१८३–१८४
तीर्थ व्रत	११	१८५
पंडित और संस्कृत	२३	१८६–१८७
मिश्रित	८०	१८८–१९४
जोड़	११४०	

दोनों भागों को मिला कर २१५२ साखियाँ

कबीर साहेब का साखी-संग्रह

[भाग १]

गुरुदेव का अंग

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह कर ले आप समान ॥१॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय ।
जिन गुरु* आँखि न देखिया, सो गुरु† दिया लखाय ॥२॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात ॥३॥
सतगुरु की महिमा अनंत, अनँत किया उपकार ।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार ॥४॥
जेहिँ खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहँ कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव ॥५॥
कबीर गुरु गरुआ मिला, रल‡ गया आटे लोन ।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन ॥६॥
ज्ञान-प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय ।
जब साहेब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥७॥
गुरु साहेब करि जानिये, रहिये सब्द समाय ।
मिले तो दँडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय ॥८॥

---

* गुरू के निज रूप से अभिप्राय है । † देहधारी रूप गुरू का ।
‡ मिल ।

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये अज्ञा माहिँ ।
कहैँ कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिँ ॥९॥
गुरु गोबिँद दोऊ खड़े, का के लागौँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविँद दियो बताय॥१०
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार ।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥११॥
लाख कोस जो गुरु बसैँ, दीजै सुरत पठाय ।
सब्द तुरी असवार ह्वै, पल पल आवै जाय ॥१२॥
जो गुरु बसैँ बनारसी, सिष्य समुँदर तीर ।
एक पलक बिसरै नहीँ, जो गुन होय सरीर ॥१३॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥१४॥
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक्क ।
बेड़ा देखा झाँझरा, उतरि भया फरक्क ॥१५॥
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस ।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बखसीस॥१६॥
सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिँ ।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिँ ॥१७॥
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार* सरीर ।
अब देवे को कछु नहीँ, योँ कह दास कबीर ॥१८॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार ।
कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार ॥१९॥
तन मन ता को दीजिये, जा के विषया नाहिँ ।
आपा सबही डारि कै, राखै साहेब माहिँ ॥२०॥

---

* साथ ।

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहैं कबीर ता दास सोँ, कैसे मन पतियाय ॥२१॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहैं कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२२॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहैं कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥२३॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला[*] देइ।
मन का मैल छुड़ाइ कै, चित दरपन करि लेइ ॥२४॥
सिष खाँडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान[†]।
सब्द सहै सन्मुख रहै, तौ निपजै सिष्य सुजान ॥२५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥२६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[‡] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[§] चोट ॥२७॥

सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहेब दरसन कारने, सब्द झरोखा कीन्ह ॥२८॥

गुरु साहेब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै गुरु भजे, तब पावै करतार ॥२९॥

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु[‖] चरन निवास ॥३०॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥३१॥

---

[*] सिकली करने का औज़ार। [†] सान। [‡] घड़ा। [§] लगाता है।
[‖] सत्य पुरुष।

गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि ।
ते नर नरकै जाइँगे, जन्म जन्म है स्वान ॥३२॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥३३॥
गुरु हैं बड़े गोविंद तें, मन में देखु विचार ।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥३४॥
गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सब्द बिहूना होय ।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय ॥३५॥
अहं अगिन निस दिन जरै, गुरु से चाहै मान ।
ता को जम नेवता दियो, होउ हमार मेहमान ॥३६॥
गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान ।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥३७॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान ।
तीन लोक की सम्पदा*, सो गुरु दीन्हा दान ॥३८॥
जम गरजे बल बाघ के, कहैं कबीर पुकार ।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार ॥३९॥
गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास ।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥४०॥
अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख ।
गुरू दया तें पावई, सुरति निरति करि देख ॥४१॥
पंडित पढ़ गुन पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सब्द परमान ॥४२॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पुजा गुरु पाँव ।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥४३॥

* दौलत ।

कहै कबीर तजि भरम को, नान्हा ह्वै के पीव।
तेजि* अहं गुरु चरन गहु, जम सौं बाचै जीव ॥४४॥
तीन लोक नौ खंड मैं, गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै, गुरू करै सो होइ ॥४५॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहैं कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥४६॥
गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय ॥४७॥
थापन[†] पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
कबीर हीरा बनिजिया[‡], मानसरोवर तीर ॥४८॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४९॥
निस्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर।
निपजी मैं साभी घना, बाँटनहार कबीर ॥५०॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय।
अंतर भींजी आतमा, हरो भयो बनराय ॥५१॥
सतगुरु के सदके[§] किया, दिल अपने को साँच।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम[‖] मेरा बाँच ॥५२॥
साँचे गुरु की पच्छ मैं, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥५३॥
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान।
दीपक जोति पतंग ज्यौं, परता आय निदान ॥५४॥

---

* तज या छोड़ कर। † स्थिति यानी ठहराव। ‡ बनिज किया या लादा। § न्योछावर। ‖ परवाना।

भली भई जो गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
घटही माँहि चबूतरा, घटही माँहिं दिवान ॥५५॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष सोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥५६॥
गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्यौं कर के मिलना भया, क्यौं बिछुड़े आवे जाय ॥५७॥
गुरू हमारा गगन में, चेला है चित माहिं।
सुरत सब्द मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं ॥५८॥
बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥५९॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६०॥
जल परमानै माछरी, कुल परमावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥६१॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥६२॥
चेतन चौकी बैठि कर, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय ह्वै निःसंक भजु, केवल नाम कबीर ॥६३॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़ा में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥६४॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना*, बहुरि न आवै हट्ट† ॥६५॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी‡ किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६६॥

---

* ख़रीदारी। † बाज़ार। ‡ पासा।

ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥६७॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन सों रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनीआग॥६८॥
सतगुरु हम सों रीझि कै, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग॥६९॥
सतगुरु के उपदेस का, सुनिया एक बिचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥७०॥
जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचा तान।
तिन तें कबहुं न छूटता, फिरता चारो खानि ॥७१॥
चार खानि में भरमता, कबहुं न लहता पार।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥७२॥
जरा* मीच† ब्यापै नहीं, मुवा न सुनियो कोय।
चलु कबीर वा देस में, जहँ बैदा सतगुरु होय ॥७३॥
काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहेब अंक‡ पसारिया, लै चला अपने देस ॥७४॥
सतगुरु साँचा सूरमा, सब्द जो बाहा§ एक।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥७५॥
सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥७६॥
सतगुरु सब्द कमान करि, बाहन लागा तीर।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर ॥७७॥

---

* वृद्ध अवस्था। † मौत। ‡ अँकवार यानी दोनों हाथ। § चलाया।

सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट ॥७८॥
सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर ।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर ॥७९॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥८०॥
कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिँ ।
भीतर बिँधे सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिँ ॥८१॥
जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि ।
लगी चोट जो सब्द की, गई कलेजे छानि ॥८२॥
सतगुरु मारा बान भरि, डोला नहीं सरीर ।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर ॥८३॥
सतगुरु मारा तान कर, सब्द सुरंगी बान ।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥८४॥
ज्ञान कमान औ लव गुना*, तन तरकस मन तीर ।
भलका† बहै तत सार का, मारा हदफ‡ कबीर ॥८५॥
कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान ।
केते जोधा पचि गये, खींचैं संत सुजान ॥८६॥
लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय ।
कहैं कबीर सो अमर भे, जीवत मिर्तक होय ॥८७॥
हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार§ ।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार ॥८८॥

---

* कमान की डोर । † गाँसी । ‡ निसाना । § चंचल यानी मन को मार के हटा दिया और उनमुनी दशा प्राप्त हुई ।

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान ।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥८९॥
सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब* ।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहूँ किताब ॥९०॥
सतगुरु मारा प्रेम सोँ, रही कटारी टूट ।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ† ॥९१॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
अलख नाम मेँ रमि रहा, चित्त न आवै और ॥९२॥
मान बड़ाई ऊरमी‡, ये जग का व्यवहार ।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥९३॥
दिल ही मेँ दीदार है, बाद बहै संसार ।
सतगुरु सब्द का मस्कला, मोहिँ दिखावनहार ॥९४॥
दीसे है सो विनसि है, नाम धरे सो जाय ।
कबीर सोई तत्त गहु, जो सतगुरु दियो बताय ॥९५॥
कुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय ।
भँवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय ॥९६॥
सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया ।
अबिनासी को परसि के, आतम अमर भया ॥९७॥
सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार ।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार ॥९८॥
सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस ।
जाय समाना सब्द मेँ, सत्त नाम बिस्वास ॥९९॥

---

* ज़ेबाइश, साज़ सामान । † अनी अर्थात नोक कटारी की जो टूट कर हृदय मेँ रह गई वह इतना कष्ट नहीँ देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, यानी प्रेम कटारी समूची क्योँ न घुस गई । ‡ तरंग (मन की) ।

कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय ।
सुरति कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥१००॥
कुमति कीच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय ।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय ॥१०१॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान ।
पंच सब्द धुनकार धुन, बाजै गगन निसान ॥१०२॥
जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर ।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥१०३॥
साँचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय ।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥१०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मस्कला देइ ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥१०५॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज ।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥१०६॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन-ताप ।
हरष सोग ब्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥१०७॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर ।
सो धोखा बिच क्यौं रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०८
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गंभीर ।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०९
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजीर* ।
हाथ जोड़ बिनती करूँ, भवसागर के तीर ॥११०॥
कोटिन चंदा उगवैं, सूरज कोटि हजार ।
सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार ॥१११॥

---

* भारी ।

सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥११२॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥११३॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार।
आई पड़ोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार ॥११४॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूं नहिँ पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥११५॥
पहिले बुरा कमाय के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट ॥११६
सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखैं खरा अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखैं अपनी ओट ॥११७॥
भवसागर जल बिष भरा, मन नहिँ बाँधै धीर।
सबल सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर ॥११८॥
सतगुरु सब्द जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुंद एकै भया, किस का करूँ निषेद ॥११९॥
सतगुरु सब्द उलंघि कै, जो कोई सिष जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥१२०॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठै आय।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय ॥१२१॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिँ।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकड़ैं बाँहिँ ॥१२२॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल*।
पास कपड़ा ढाँके नहीं, क्या करै बपुरी चोल† ॥१२३॥

---

* मन में भूल पड़ी। † बिचारी चोली।

जग मूआ बिषधर* धरे, कहैं कबीर विचार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जल उतरै पार ॥१२४॥

॥ सोरठा ॥

बिन सतुगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिष्नु महेस, और सकल जिव को गनै ॥१२५॥

॥ साखी ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१२६॥

॥ सोरठा ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तबै जिव काज, निःचय कै परतीत करु॥१२७॥

॥ साखी ॥

अच्छर आदी जगत मैं, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया सों पाइये, सत्त नाम निज सार ॥१२८॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटो भव को अंक, आवागवन निवारहू ॥१२९॥

॥ साखी ॥

बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै ॥१३०॥
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१३१॥
सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज ॥१३२॥

---

* साँप, अर्थात मन और माया।

॥ सोरठा ॥

जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर ।
जम के अमल मिटाय, हंस जाय सत लोक कहँ ॥१३३॥

॥ साखी ॥

तत* दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई ।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सोई ॥१३४॥
जग भवसागर माहिँ, कहु कैसे बूड़त तरै ।
गहु सतगुरु की बाहिँ, जो जल थल रच्छा करैं ॥१३५॥
निज मत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिलै ।
जग तेँ रहै उदास, ता कहँ क्योँ नहिँ खोजिये ॥१३६॥

॥ दोहा ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत ।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भवजल जीति ॥१३७॥
सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिँ, जो ऐसी सुधि पाय ॥१३८॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव ।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥१३९॥

॥ झूठे गुरू का अंग ॥

गुरू मिला ना सिष मिला, लालच खेला दाव ।
दोऊ बूड़े धार मेँ, चढ़ि पाथर की नाव ॥१॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध† ।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥२॥

---

* तत्व अर्थात सार बस्तु । † जिसकी आँखैँ बिलकुल बंद हैँ ।

जानंता* बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन ।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥३॥
कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय ।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाझन† होय ॥४॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
स्वाँग जती का पहिरि के, घर घर माँगै भीख ॥५॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव ।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सब्द बतावै दाव ॥६॥
कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और ।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥७॥
गुरू किया है देंह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं ।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥८॥
जा गुरु तें भ्रम ना मिटै, भ्रांति‡ न जिव की जाय ।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सब्द लखाय ॥९॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय ।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥१०॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार ।
द्वार न पावै सब्द का, भटकै बारंबार ॥११॥
कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन दिया बताय ।
सिष सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचै जाय ॥१२॥
बेड़े चढ़िया झाँझरे, भवसागर के माहिं ।
जो छाँड़े तो बाचिहै, नातर बूड़ै माहिं ॥१३॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिं ।
कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिं ॥१४॥

* जानकार, भेदी । † तपन । ‡ भटक ।

नीर पियावत का फिरै, घर घर सायर वारि* ।
तृषावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ॥१५॥
गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास ।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस ॥१६॥
रासि† पराई राखता, घर का खाया खेत ।
औरन को परमोधता, मुख में परि गई रेत ॥१७॥
गुरुआ तो घर घर फिरै, दीच्छा हमरी लेहु ।
कै बूड़ौ कै ऊछलौ, टका परदनी‡ देहु ॥१८॥
जा का गुरु ग्रेही§ अहै, चेला ग्रेही होय ।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय ॥१९॥
गुरू नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु सिष्य न कोइ ॥२०॥
गुरु पूरा सिष सूरा, बाग मोरि रन पैठ ।
सत्त सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥२१॥
जा के हिरदे गुरु नहीं, सिष साखा की भूख ।
ते नर ऐसा सूखसी, ज्यौं बन दाझा रूख ॥२२॥
सिष साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मित्त ।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥२३॥

॥ गुरुमुख का अंग ॥

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग ।
कहैं कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥१॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान ।
और कबीर नहिँ देखता, है वाही को ध्यान ॥२॥

---

* बाड़ी । † खलियान । ‡ प्रदान=बख़्शिश; धोती का आँचल । §संसारी ।

गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहैं कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३॥
उलटे सुलटे बचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुक्ख ॥४॥

॥ मनमुख का अंग ॥

सेवक-मुखी कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहैं कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥१॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहैं कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥२॥
सतगुरु सब्द उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥३॥
गुरू बिचारा क्या करै, जो सिष्ये माहीं चूक।
भावै ज्यौं परमोधिये, बाँस बजाई फूँक ॥४॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागैगा मोर ॥५॥
तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सौंपते, जी धड़कैगा तोर ॥६॥

॥ चौपाई ॥

गुरु सोँ करै कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमै आई ॥७॥
जो सिष गुरु की निंदा करई। सूकर स्वान गर्भ मेँ परई ॥८॥

॥ निगुरा का अंग ॥

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निरफल गया, बूझौ बेद पुरान ॥१॥

जो निगुरा सुमिरन करै, दिन मेँ सौ सौ बार।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार[*] ॥२॥
गर्भ जोगेसर गुरु बिना, लागा हरि के सेवा।
कहैँ कबीर बैकुंठ से, फेर दिया सुकदेव ॥३॥
जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरि के सेव।
कहैँ कबीर बैकुंठ मेँ, उलटि मिला सुकदेव ॥४॥
पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट[†] चलै, जब तब करै कुदाव[§] ॥५॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात।
होइ जगत मेँ कूकरी, फिरै उघारे गात ॥६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय ॥७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा बिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥८॥
चौसठ दीवा[‖] जोय के, चौदह चंदा[¶] माहिँ।
तेहिँ घर किस का चाँदना, जेहिँ घर सतगुरु नाहिँ ॥९॥
निसि अँधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हैँ, तहू सुदृष्टिहि मंद ॥१०॥
गगन मँडल के बीच मेँ, तहँवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर ॥११॥

---

[*] शहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस पुरुष के साथ जलै। [†] कहते हैँ कि सुकदेव जी माता के गर्भ ही मेँ कई बरस तक रह कर भगवत भजन करते रहे पर स्वर्ग मेँ जगह पाने योग्य नहीँ समझे गये जब तक कि राजा जनक को गुरू धारन नहीँ किया। [‡] कुराह। [§] कूद फाँद। [‖] चौँसठ जोगिनी की कला। [¶] चौदह विद्या का प्रकाश।

॥ गुरु शिष्य खोज का अंग ॥

ऐसा कोऊ ना मिला, हम को दे उपदेस ।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥१॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से रहिये लाग ।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥२॥
ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय ।
पाँचो लरिका पटकि के, रहै नाम लौ लाय ॥३॥
हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ ॥४॥
ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन सुजान ।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान ॥५॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान ।
अपना करि किरपा करै, ले उतारि मैदान ॥६॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहौं दुख रोय ।
जा से कहिये भेद को, सो फिर बैरी होय ॥७॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय ।
कवन मँडल में पुरुष है, जाहि रटौं लौ लाय ॥८॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं ।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावै बाहिं ॥९॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं, तैसा मिला न कोय ।
ततबेता तिरगुन रहित, निरगुन से रत होय ॥१०॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥११॥

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय ॥१२॥
सिप तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिप से कछु नहिं लेय ॥१३॥
सर्पहिं दूध पियाइये, सोई विष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही विष खाय*, ॥१४॥
नादी विन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोइ तख्त तरे का ना मिला, जा से पूछौं भेद ॥१५॥
तख्त तरे की सो कहै, तख्त तरे का होय।
मंझ महल की को कहै' बाँका परदा सोय ॥१६॥
मंझ महल की गुरु कहै' देखा सब घर बार।
कूँची दीन्ही हाथ मैं परदा दिया उघार ॥१७॥
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइयाँ, आदि अंत का यार ॥१८॥
पुहुपन केरी बास ज्यौं, व्यापि रहा सब ठाहिँ।
बाहर कबहुँ न पाइये पावै संतोँ माहिँ ॥१९॥
बिरछा पूछै बीज को, बीज वृच्छ के माहिँ।
जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाहिँ ॥२०॥
डाल जो ढूँढ़ै मूल को, मूल डाल के माहिँ।
आप आप को सब चलै, कोइ मिलै मूल से नाहिँ ॥२१॥
मूल कबीरा गहि चढ़ै, फल खावै भरि पेट।
चौरासी की गम नहीं, ज्योँ जाने त्यौं लेट ॥२२॥
आदि हती सब आप मैं, सकल हतीता माहिँ।
ज्योँ तरवर के बीज मैं, डार पात फल छाँहिँ ॥२३॥

* अपने शिष्य के बिकारोँ को खींच ले।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२४॥
हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद मैं, सो कित हेरी जाय ॥२५॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद मैं, सो कित हेरा जाय ॥२६॥
बुंद समानी समुँद मैं, यह जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद मैं, बूझै बिरला कोय ॥२७॥
एक समाना सकल मैं, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ मैं, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२८॥
कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेहि।
जेहि जेहि औषधि गुरु मिलै, सो सो औषधि देहि ॥२९॥

॥ सेवक और दास का अंग ॥

सेवक सेवा मैं रहै, सेवक कहिये सोय।
कहैं कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥१॥
सेवक सेवा मैं रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहैं कबीर समुझाय ॥२॥
सेवक स्वामी एक मति, जो मति मैं मति मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥३॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाँड़ि न जाय ॥४॥
कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय ॥५॥

सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात ।
कहैं कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥६॥
निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबँध होय ।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥७॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहिं दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाँड़ै पास ॥८॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुं काल ।
पलक एक में प्रगट ह्वै, छिन में करै निहाल ॥९॥
दात धनी याचै* नहीं, सेव करै दिन रात ।
कहै कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात ॥१०॥
सब कछु गुरु के पास है, पैये अपने भाग ।
सेवक मन सों प्यार है, निस दिन चरनन लाग ॥११॥
सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव ।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाव ॥१२॥
दुर दुर करैं तो बाहिरे तू तू करैं तो जाय ।
ज्यों गुरु राखैं त्यों रहै, जो देवैं सो खाय ॥१३॥
दासातन हिरदे नहीं, नाम धरावै दास ।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥१४॥
भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दै मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं, निस दिन याचौं तोहिं ॥१५॥
धरती अम्बर† जायँगे, बिनसैंगे कैलास ।
एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास ॥१६॥
एकम एका होन दे, बिनसन दे कैलास ।
धरती अम्बर जान दे, मो में मेरे दास ॥१७॥

---

* माँगै । †आकाश ।

यह मन ता को दीजिये, जो साँचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तहू न दूजा जोय ॥१८॥
काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की, पैठि के निकसनहार ॥१९॥
काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥२०॥
कबिरा पाँच बलधिया*, ऊजर ऊजर जाहिँ।
बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहिँ ॥२१॥
कबीर गुरु का भावता, दूरहि तेँ दीसंत।
तन छीना मन अनमना†, जग तेँ रूठि फिरंत ॥२२॥
अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय।
ज्योँ जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥
राता राता सब कहैँ, अनराता कहै न कोय।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
जा घट मेँ साँईं बसै, सो क्योँ छाना होय।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय ॥२५॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥२६॥
सब घट मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥२७॥

॥ सूरमा का अंग ॥

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने चोट।
कायर भाजै कछु नहीं, सूरा भाजै खोट ॥१॥

---

* बैल। † बिकल।

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने घाव ।
खेत पुकारै सूरमा, अब लड़ने का दाँव ॥२॥
गगन दमामा बाजिया, हनहनिया[*] के कान ।
सूरा धरै वधावना, कायर तजै परान ॥३॥
सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाँड़ै खेत ॥४॥
सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाँड़ै तन का मोह ॥५॥
खेत न छाँड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिँ ।
आसा जीवन मरन की, मन में आनै नाहिँ ॥६॥
अब तो जूझे ही बनै, मुड़ चाले घर दूर ।
सिर साहेब को सौंपते, सोच न कीजे सूर ॥७॥
घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट ।
जतन किये नहिँ बाहुरै[†], लगी मरम की चोट ॥८॥
घायल की गति और है, औरन की गति और ।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥९॥
सूरा सीस उतारिया, छाँड़ी तन की आस ।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥१०॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार ।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥११॥
चित चेतन ताजी[‡] करै, लव की करै लगाम ।
सब्द गुरू का ताजना[§], पहुँचै संत सुठाम ॥१२॥
कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजे हाथ ।
दिवस थके साँईं मिलै, पीछे पड़सी रात ॥१३॥

---
[*] लड़ने वाला । [†] मुड़ै । [‡] घोड़ा । [§] ताज़ियाना=कोड़ा ।

हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान ।
चंद सूर दोय पायड़ा[*], चढ़सी संत सुजान ॥१४॥
साध सती औ सूरमा, इनकी बात अगाध ।
आसा छोड़ैं देह की, तिनमें अधिका साध ॥१५॥
साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोइ नाहिं ।
अगम पंथ को पग धरैं, डिगैं तो ठाहर[†] नाहिं ॥१६॥
साध सती औ सूरमा, कबहुं न फेरैं पीठ ।
तीनौं निकस जो बाहुरैं, ता को मुँह मति दीठ ॥१७॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज दंत ।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥१८॥
साध सती औ सूरमा, दई न मोड़ै मूँह ।
ये तीनौं भागे बुरे, साहेब जा की सूँह[‡] ॥१९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥२०॥
धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यौं ढेल ।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥२१॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक ।
साहेब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥२२॥
जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय ।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥२३॥
सूरा के मैदान में, कायर फंदा[§] आय ।
ना भाजै ना लड़ि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥२४॥
कायर बहुत पमावही[‖], बड़क[¶] न बोलै सूर ।
सारी खलक यों जानही, केहि के मोहड़े नूर ॥२५॥

---

[*] रकाब । [†] ठिकाना । [‡] सन्मुख । [§] फँस पड़ा । [‖] डींग मारता है । [¶] बढ़कर ।

सूरा थोड़ा ही भला, सत करि रोपै पग्ग[*] ।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा वग्ग[†] ॥२६॥
रनहिं घसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास ।
घरै वधावा वाजिया, और न दूजी आस ॥२७॥
साँई सेँति[‡] न पाइये, वातन मिलै न कोय ।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥२८॥
अप्प स्वारथी मेदिनी[§], भक्ति स्वारथी दास ।
कबीर नाम सुवारथी, छाँड़ी तन की आस ॥२९॥
ज्यौँ ज्योँ गुरु गुन[‖] साँभलै[¶], त्यौँ त्यौँ लागै तीर ।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर ॥३०॥
ऊँचा तरवर गगन को, फल निरमल अति दूर ।
अनेक सयाने पचि गये, पंथहिँ सूए झूर[**] ॥३१॥
दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेला सोय[††] ।
सिर सौँपे उन चरन मेँ, कारज सिद्धी होय ॥३२॥
जेता तारा रैन का, एता वैरी मुज्झ ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[‡‡], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥३३॥
चौपड़ माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार ।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार ॥३४॥

---

[*] पैर । [†] बगीचा जो सावन के महीने यानी बरसात में घना हो जाता है और फिर जैसे का तैसा । [‡] मुफ़्त । [§] पृथ्वी पानी को चाहती है । [‖] धनुष की डोर या रोदा । [¶] खिँचे । [**] रास्ते ही में ख़ाली अटक रहे । [††] जिसको पूरे सतगुरु मिले हैं । [‡‡] अगले समय में शत्रु को सूली पर चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे और कंगूरे पर लगा देते थे ।

जो हारौं तो सेव गुरु, जो जीतौं तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव ॥३५॥
खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेब जोग ॥३६॥
अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥३७॥
नेह निभाए ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥३८॥
भाव भालका[*] सुरति सर[†], धरि धीरज कर[‡] तान।
मन की मूठ जहाँ मँडी, चोट तहाँ हीं जान ॥३९॥
मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े[§] माँड़ा खेत ॥४०॥
कायर भया न छूटि हौ, कछु सूरता समाय।
भरम भालका दूर करि, सुमिरन सील सँजाय ॥४१॥
कोने परा न छूटि हौ, सुनु रे जीव अबूझ।
कबिरा मँड़ मैदान में, करि इंद्रिन सौं जूझ ॥४२॥
बाँका गढ़ बाँका भला, बाँकी गढ़ की पौल[‖]।
काढ़ि कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल[¶] ॥४३॥
बाँकी तेग[**] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥४४॥
कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान[††]।
ज्ञान कुहाड़ा[‡‡] कर्म बन, काटि किया मैदान ॥४५॥

---

[*] गाँसी। [†] तीर। [‡] हाथ। [§] मैदान में। [‖] रास्ता। [¶] खलबली।
[**] तलवार। [††] पाँचो कुत्ते। [‡‡] कुल्हाड़ा।

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम[*]।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम[†] ॥४६॥
कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय।
भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय ॥४७॥
ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥४८॥
सूरा सार सँभालिया, पहिरा सहज सँजोग।
ज्ञान गजंदा[‡] चढ़ि चला, खेत पड़न का जोग[§] ॥४९॥
सीतलता संजोय लै, सूर चढ़े संग्राम।
अब की भाज न सरत है, सिर साहेब के काम ॥५०॥
सूरा नाम धराय के, अब का डरपै बीर।
मँड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥५१॥
तीर तुपक[||] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥५२॥
कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़ै जूझ।
पाँचो इंद्री पकरि के, दूरि करै सब दूझ ॥५३॥
कबीर सोई सूरमा, जा के पाँचो हाथ।
जा के पाँचो बस नहीं, तेहिँ गुरु संग न साथ ॥५४॥
कबीर रन में पैठि के, पीछे रहै न सूर।
साँईं के सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥५५॥
जाय पूछ वा घायलै, दिवस पीर निसि जागि।
बाहनहारा जानिहै, कै जानै जिस लागि ॥५६॥

[*] दुशमन—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। [†] मुहिम या लड़ाई।
[‡] हाथी। [§] शुभ घड़ी। [||] बंदूक।

कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला माटी मिली, सिर साटे व्यवहार ॥५७॥
आगे भली न होयगी, कहाँ धरोगे पाँव।
सिर सौंपो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥५८॥
सूर सिलाह* न पहिरई, जब रन बाजा तूर।
माथा काटै धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥५९॥
जोग से तो जौहर† भला, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिन खाँड़े संग्राम ॥६०॥
तीर तुपक बरछी वहै, बिगसि जायगा चाम।
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम ॥६१॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥६२॥
बिना पाँव का पंथ है, मंझि सहर अस्थान।
बिकट बाट औघट घना कोइ पहुँचै संत सुजान ॥६३॥
पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥६४॥
रन धसिया ते ऊबरा, पाया गेह निवास।
घरे बधावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥६५॥
जब लग धड़ पर सीस, है, सूर कहावै कोय।
माथा टूटै धर लड़ै, कमँद‡ कहावै सोय ॥६६॥
सूरा तो साँचे मते, सहै जो सन्मुख धार।
कायर अनी चुभाय कै, पाछे झँखै अपार ॥६७॥

---

* लड़ाई के हथियार; ढाल तलवार। † आत्म-घात, खुद-कुशी।
‡ एक राक्षस जिस का सिर गदा की मार से धड़ के भीतर घुस गया था लेकिन फिर भी वह बराबर लड़ता था; बिना सीस का जोधा।

भाजि कहाँ लौं जाइये, भय भारी घर दूर।
बहुरि कबीरा खेत रहु, दल आया भर पूर ॥६८॥
सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह[*] जँजीर।
अबिनासी की फौज मैं, माँड़ा दास कबीर ॥६९॥
ज्ञान कमाना लौ गुना[†], तन तरकस मन तीर।
भलका बहै है सार का, मारै हदफ[‡] कबीर ॥७०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, कोइ खैंचै संत सुजान ॥७१॥
घटी बढ़ी जानै नहीं, मन मैं राखै जीत।
गाडर[§] लड़ै गजंद[||] सा, देखो उलटी रीत ॥७२॥
धुजा फरक्कै सुन्न मैं, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर ॥७३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल ॥७४॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिँ।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहि ॥७५॥
कायर. सेरी[¶] ताकवै, सूरा माँड़ै[**] पाँव।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥७६॥

॥ पतिब्रता का अंग ॥

पतिबरता के एक है, बिभिचारिन के दोय।
पतिबरता बिभिचारिनी, कहु कस मेला होय ॥१॥

---

[*] बकतर। [†] डोरी। [‡] निशाना। [§] भेड़। [||] हाथी। [¶] रास्ता भागने का। [**] जमावे।

पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥२॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥३॥
पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥४॥
नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देवँ ॥५॥
कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥६॥
पपिहा का पन देख कर, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच* ॥७॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ न होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥८॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोई पुरबला भाग।
सोती जागी सुंदरी, साँईं दिया सुहाग ॥९॥
पतिबरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय ॥१०॥
इक चित होय न पिय मिलै, पतिब्रत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिया कैसे पावै ॥११॥
सुंदर तो साँईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छाँड़ै पास ॥१२॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ सों खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल ॥१३॥

---

* चोंच।

सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिवरता के तन नहीं, सुरति बसै पिउ माहिं ॥१४॥
दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस।
पतिवरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥१५॥
पतिवरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि की जोत ॥१६॥
पतिवरता पति को भजै, पति पर धर बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥१७॥
पतिवरता बिभिचारिनी, एक मँदिर में बास।
वह रँग राती पीव के, यह घर घर फिरै उदास ॥१८॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिवरता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥१९॥
सुरति समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिवरता पति को मिली, पलक न छाँड़ै पास ॥२०॥
साँईं मोर सुलच्छना, मैं पतिवरता नार।
दो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२१॥
जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय ॥२२॥
जो यह एकै जानिया, तौ जानौ सब जान।
जो यह एक न जानिया, तौ सबही जान अजान ॥२३॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥२४॥
प्रीति अड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से, नील रँगाऊँ दंत ॥२५॥

कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥२६॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय ॥२७॥
मेरा साँईं एक तू, दूजा और न कोय।
दूजा साँईं तौ करौं, जो कुल दूजी होय ॥२८॥
पतिबरता तब जानिये, रतिउ* न उघरै नैन।
अंतर गति सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥२९॥
भोरै भूली खसम को, कबहुँ न किया विचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला भरतार ॥३०॥
जो गावै सो गावना, जो जोड़ै सो जोड़।
पतिबरता साधू जना, यहि कलि मैं हैं थोड़ ॥३१॥
पतिबरता ऐसे रहै, जैसे चोली पान†।
तब सुख देखै पीव का, चित्त न आवै आन ॥३२॥
मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिन, और न देखौं जीव ॥३३॥

॥ सती का अंग ॥

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाँड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥१॥
ढोल दमामा बाजिया, सब्द सुना सब कोय।
जो सर‡ देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥२॥

---

* रत्ती भर भी। † चोली की दोनों टुक्रियों पर पान बना देते हैं। ‡ अगिन।

सती जरन को नीकसी, चित धरि एक बिबेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥३॥
सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह।
सब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देह ॥४॥
सती बिचारी सत किया, काँटौं सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना, चहुँ दिस अगिन लगाय ॥५॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥६॥
हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यौं न जराय।
मूए पीछे सत करै, जीवत क्यौं न कराय ॥७॥

॥ बिभिचारिन का अंग ॥

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्यौं होय ॥१॥
सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौंपै मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥२॥
कबीर मन दीया नहीं, तन करि डारा जेर।
अंतरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥३॥
नवसत* साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय।
पिय के मन मानै नहीं, (तो) बिडँब† किये क्या होय॥४॥
मुख सोँ नाम रटा करै, निस दिन साधन संग।
कहो धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥५॥

---

* नौ और सात=सोलह (सिंगार)। † बाहरी सजाव।

मन दीया कहिँ औरही, तन साधन के संग।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥६॥
रात जगावै राँड़िया, गावै विषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरू न आवै चीत ॥७॥
बिभिचारिन बिभिचार सूँ, आठ पहर हुसियार।
कहै कबीर पतिबर्त बिन, क्यौं रीझै भरतार ॥८॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरुष भरतार ॥९॥
बिभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन सोय।
कहैं कबीर पतिबर्त बिन, नारी गई बिगोय ॥१०॥
कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मिंत*।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचिंत ॥११॥

॥ भक्ति का अंग ॥

कबीर गुरु की भक्ति कर, तजि विषया रस चौज।
बार बार नहिँ पाइहै, मानुष जन्म की मौज ॥१॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल†।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल ॥२॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यौं खाँड़े की धार।
बिना साँच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार ॥३॥
भक्ति दुहेली‡ गुरू की, नहिँ कायर का काम।
सीस उतारै हाथ सौं, सो लेसी सतनाम ॥४॥

---

* मित्र। † चाहे जैसे नीच ऊँच चोले या योनि मैं जीव आ पड़ै।
‡ कठिन।

भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार ।
जो डोलै तो कटि परै, निश्चल उतरै पार ॥५॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास ॥६॥
हरष बड़ाई देख कर, भक्ति करै संसार ।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार ॥७॥
भक्ति निसेनी* मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥८॥
भक्ती बिनु नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय ।
सब्द सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय ॥९॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय ॥१०॥
भक्ति प्रान तें होत है, मन दै कीजै भाव ।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव ॥११॥
भक्ति भेप बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥१२॥
जहाँ भक्ति तहँ भेप नहिं, वर्नाश्रम तहँ नाहिं ।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सो दुर्लभ जग माहिं ॥१३॥
भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय ।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय ॥१४॥
भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होयँ सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१५॥
सब से कहौं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
भक्ति ठानि सब्दै गहै, बहुरि न काछै भेख ॥१६॥

* सीढ़ी ।

देखा देखी भक्ति को, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाँड़सी, ज्यों कँचुली भुजंग ॥१७॥
टोटे में भक्ती करै, ता का नाम सपूत।
माया धारी मसखरै, केते ही गये ऊत ॥१८॥
देखा देखी पकड़सी, गई छिनक में छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरै, सतगुरु स्वामी मूठ ॥१९॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिँ जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥२०॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥२१॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझै नहीं, पेट भरन से काज ॥२२॥
खेत बिगास्यो खरतुआ*, सभा बिगारी कूर†।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर ॥२३॥
तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुगति गई इक लोभ तेँ, भक्ति गई अभिमान ॥२४॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२५॥
कामी क्रोधी लालची, इन तेँ भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥२६॥
भक्ति दुवारा साँकरा, राई दसवें भाव‡।
मन ऐरावत§ ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥२७॥

---

* एक निकम्मी घास जो आस पास के अनाज की डाभियों को जला देती है। † दुष्ट। ‡ राई के दसवें भाग जैसा झीना दरवाज़ा भक्ति का है। § इंद्र का हाथी।

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार ।
धूआँ का सा धौलहर[*], जात न लागै बार ॥२८॥
निरपच्छी को भक्ति है, निरमोही को ज्ञान ।
निरदुन्दी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ॥२९॥
भक्ति सोई जो भाव से, इकमन चित को राखि ।
साँच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि[†] ॥३०॥
सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय ।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय ॥३१॥
जल ज्यौं प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ॥३२॥
कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय ।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥३३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव ।
कहैं कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव ॥३४॥
भक्ति पियारी नाम की, जैसी प्यारी आगि ।
सारा पट्टन[‡] जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि ॥३५॥
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत ।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत को संत ॥३६॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय ।
कहै कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय ॥३७॥
भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय ॥३८॥

---

[*] थरहरा । [†] निषेध कर । [‡] शहर ।

॥ लव का अंग ॥

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिँ जाय ।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिँ समाय ॥१॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस ।
लव लागी कल ना परै, अब बोलत न हदीस ॥२॥
काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर ।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर ॥३॥
मन उलटा दरिया मिला, लागे मलि मलि न्हान ।
थाहत थाह न आवई सो पूरा रहमान ॥४॥
गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट ।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ॥५॥
जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जाय ।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय ॥६॥
लै पावौ तौ लै रहौ, लैन कहूँ नहिँ जाव ।
लै बूड़े सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥७॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि दैँह ।
अमृत पीवै आत्मा, गुरु से जुड़ै सनेह ॥८॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर ।
अपनी दैँह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥९॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय ।
लागी सोई जानिये, जो वार पार होइ जाय ॥१०॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक ।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक ॥११॥

लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह ॥१२॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१३॥
चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कहै कबीर छाँड़ै नहीं, ऐसी वस्तु लगार* ॥१४॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि के, चरनौं चित दे री ॥१५॥
और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का सों कहौं, मन राता गुरु रंग ॥१६॥
ग्रंथ माहिं पाया अरथ, अरथै माहीं मूल।
लव लागी निरमल भया, मिटि गया संसय सूल ॥१७॥
सोऔं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोयन† राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय ॥१९॥

॥ बिरह का अंग ॥

बिरहिन देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जीव ॥१॥
बिरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥२॥
बिरह जलंती देख कर, साँईं आये धाय।
प्रेम बूँद सों छिरकि के, जलती लई बुझाय ॥३॥

---

* लगन या प्रीत। † आँख।

अँखियाँ तो झाँई परी, पंथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥४॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ रहै, पिया मिलन की आस ॥५॥
बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरति-सनेही ना मिलै, तब लग मिटै न पीर ॥६॥
बिरहिन ऊभी पंथ सर, पंथिनि पूछै धाय*।
एक सब्द कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय ॥७॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम ॥८॥
बिरह भुवंगम† तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जिये, जिये तो बाउर‡ होय ॥९॥
बिरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१०॥
बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि§।
जा घट तालाबेलिया‖, ता को लावो सोधि ॥११॥
कबीर सुंदरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
बेग मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥१२॥
कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मोपै सहा न जाय ॥१३॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१४॥

---

* बिरहिन रास्ते में व्याकुल होकर बटोही से पूछती है। †साँप।
‡ बौड़हा। § शांति देना। ‖ व्याकुलता।

येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव ।
लोहू सींचौं तेल ज्यौं, कब मुख देखौं पीव ॥१५॥
बिरहा आया दरस को, कडुवा लागा काम ।
काया लागी काल होय, मीठा लागा नाम ॥१६॥
कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर चीत ।
बिन रोये क्यौं पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१७॥
हँसौं तो दुख ना बीसरै, रोऔं बल घटि जाय ।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यौं घुन काठहिँ खाय ॥१८॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहुँ नहिँ दीठ ।
छाल उपार[*] जो देखिया, भीतर जमिया चीठ[†] ॥१९॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिन होय ॥२०॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥२१॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्है कोय ।
तम्बोली का पान ज्यौं, दिन दिन पीला होय ॥२२॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं[‡] तुज्झ ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी बेदन मुज्झ ॥२३॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग ।
साहेब अजहुँ न आइया, मंदे हमारे भाग ॥२४॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान ।
हाड़ मास सब खात है, जीवत करै मसान ॥२५॥
अदेसो नहिँ भागसी, संदेसो कहि आय ।
कै आवै पिय आपही, कै मोहिँ पास बुलाय ॥२६॥

---

[*] उखाड़ कर । [†] लकड़ी का चूरा या बुरादा । [‡] चाहै ।

आय सकौं नहिं तोहिं पै, सकौं न तुज्झ बुलाय ।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२७॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया, जनि जाने दुखदाय ।
नाम सनेही कारने, रो रो रात बिताय ॥२८॥
जोइ आँसू सजन जन, सोई लोक बहाहिं ।
जो लोचन लोहू चुवै, तो जानौं हेतु हियाहिं ॥२९॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग ।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग[*] ॥३०॥
बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुआय ।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥३१॥
तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिन से लागि ।
मिर्तक पीड़ा जानही, जानैगी क्या आगि ॥३२॥
फाड़ि पटोली[†] धुज करौं, कामलड़ी[‡] फहराय ।
जेहिं जेहिं भेषे पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥३३॥
परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय ।
सो बूटी पायौं नहीं, जा तें जीवन होय ॥३४॥
बिरह जलंती मैं फिरौं, मो बिरहिन को दुक्ख ।
छाँह न बैठौं डरपती, मत जलि उट्ठै रुक्ख[§] ॥३५॥
चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लाऔं आगि ।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥३६॥
अंबर[‖] कुज्जा[¶] कर लिया, गरजि भरे सब ताल ।
जिन तें प्रीतम बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥३७॥

---

[*] उत्साह से । [†] दुपट्टा । [‡] कमरी यानी छोटा कम्बल । [§] पेड़ । [‖] आकाश । [¶] मिट्टी का भाँडा ।

कागा करँक* ढँढोलिया†, मुट्ठी इक लिया हाड़ ।
जा पिंजर बिरहा बसै, माँस कहाँ तैं काढ़ ॥३८॥
रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्ही कानि‡ ।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥३९॥
बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग ।
दुख सिरहाने पायतन§, कौन बना संजोग ॥४०॥
बिरह जगावै ब्रह्म को, ब्रह्म जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति को, सुरति मिलावै पीव ॥४१॥
बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार‖ ।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥४२॥
तन मन जोबन जारि के, भस्म करी है देँह ।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुँ ढँढोरै खेह‖ ॥४३॥
अंक भरी भरि भैंटिये, मन नहिं बाँधै धीर ।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥४४॥
जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु ।
नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जामै मासु ॥४५॥
नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय ।
छूवत ही मरि जायगो, तालाबेली¶ होय ॥४६॥
जो जन भींजे नाम रस बिगसित कबहुँ न सुक्ख ।
अनुभव भावन दरसही, ते नर सुक्ख न दुक्ख** ॥४७॥

---

* हड्डी की ठठरी। † ढूँढ़ा। ‡ लिहाज़, मुरौवत। § पैताने। ‖ राख को ढँढोलती है। ¶ तड़प, बेकली। ** जो भक्त नाम रस में पगे हैं और जिन का अनुभव जागा है उनको बाहरी हर्ष नहीं होता और दुख सुख के परे होजाते हैं।

कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय ।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥४८॥
दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग ।
तीनोँ मिलि कर जोइया*, उड़ि उड़ि मिलै पतंग ॥४९॥
हिरदे भीतर दव† बलै, धुवाँ न परगट होय ।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥५०॥
झाल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूट ।
हंसा जोगी चलि गया, आसन रही भभूत ॥५१॥
आगे आगे दव बलै, पाछे हरियर होय‡ ।
बलिहारी वा बृच्छ§ की, जड़ काटे फल जोय ॥५२॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक ।
जब सोवोँ तब दुइ जना, जब जागोँ तब एक ॥५३॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक चहुटै‖ नहीं, धूवाँ है है जाय ॥५४॥
बिरहा मो सोँ योँ कहै, गाढ़ा¶ पकड़ो मोहिँ ।
चरन कमल की मौज मेँ, ले पहुँचाओँ तोहिँ ॥५५॥
सबहीं तरु तर जाइ के, सब फल लीन्हा चीख ।
फिरि फिरि माँगत कबीर है, दरसनही की भीख ॥५६॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिँ आय ।
नहिँ मारै छाँड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय ॥५७॥
पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय ।
रैन दिवस मोहिँ कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय॥५८॥

---

* संयोया । † आग । ‡ झाड़ी को जला देने से थोड़े दिन मेँ वह ख़ूब हरी उगती है । § चाह । ‖ चोट लगाना । ¶ मज़बूत ।

जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह ।
देही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं विदेह ॥५९॥
साँईं सेवत जल गई, मास न रहिया देह ।
साँईं जब लगि सेइहौं, यह तन होय न खेह ॥६०॥
निस दिन दीझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय* ।
दास कबीरा क्योँ बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥६१॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय ।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥६२॥
चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय ।
मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय ॥६३॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान ।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥६४॥
देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय ।
बिरहिन पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय ॥६५॥
गलोँ तुम्हारे नाम पर, ज्योँ आटे में नोन ।
ऐसा बिरहा मेल कर, नित दुख पावै कौन ॥६६॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाँहि ।
अपना कर बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥६७॥
जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं ।
ज्योँ दरपन की सुंदरी, किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥६८॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग ।
ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलंती आग ॥६९॥
चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥७०॥

---

* आग ।

बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माहिं ।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि ॥७१॥
बिरहिन उठि उठि भुइँ परै, दरसन कारन राम ।
मूए पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ॥७२॥
मुए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥७३॥
यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग ।
कबहुक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग ॥७४॥
यह तन जारि के मसि* करौं, लिखौं गुरू का नाँव ।
करौं लेखनी† करम की, लिखि लिखि गुरू पठाँव॥७५॥
बिरहा पूत लोहार का, धँवै‡ हमारी देह ।
कोइला ह्वै नहिं छूटिहै, जब लग होय न खेह ॥७६॥
बिरहिनि थी तौ क्यों रही, जरी न पिउ के साथ ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥७७॥
लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि ।
बिरह की ओदी लाकरी, सिलग सिलग उठि जागि॥७८
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय ।
गूँगा सुपना देखिया, समझि समझि पछिताय॥७९॥
सब रग ताँत रबाब§ तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै, कै साँईं कै चित्त ॥८०॥
तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥८१॥

---

* सियाही । † क़लम । ‡ धौंकै । § एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है ।

मो बिरहिनि का पिउ मुआ, दाग न दीया जाय ।
मासहिँ गलि गलि भुइँ परा, करँक रही लपटाय ॥८२॥
भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार ।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥८३॥
जीव बिलंबा पीव सोँ, अलख लख्यो नहिँ जाय।
साहेब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८४॥
जीव बिलंबा पीव सोँ, पिय जो लिया मिलाय ।
लेख समान[*] अलेख मेँ, अब कछु कहा न जाय ॥८५॥
आगि लगी आकास मेँ, झरि झरि परै अँगार ।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥८६॥
बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव ।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भैँटा पीव ॥८७॥
बिरह कुल्हारी तन बहै[†], घाव न बाँधै रोह ।
मरने का संसय नहीँ, छूटि गया भ्रम मोह ॥८८॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि ।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिँ ॥८९॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय ।
जिन या बेदन निर्मई[‡], भला करैगा सोय ॥९०॥
जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय ।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥९१॥

॥ प्रेम का अंग ॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिँ ।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिँ ॥१॥

[*] समाया । [†] चलै । [‡] उपजाई; पैदा की ।

सीस उतारै भुँइ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥२॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥३॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥४॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सब्द का, लाल खड़े मैदान ॥५॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट* प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥६॥
आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय ॥७॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥८॥
प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥९॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥१०॥
जा घट प्रेम न संचरै†, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥११॥
आया बगूला‡ प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ॥१२॥
प्रेम बिकंता मैं सुना, माथा साटे§ हाट‖।
बूझत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट ॥१३॥

* जो कभी घटता नहीं। † बसै। ‡ बवंडर। § बदले। ‖ बाज़ार।

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग ।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥१४॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चंद चकोर ।
घींच* टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर ॥१५॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह ।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबहीं त्यागै देह ॥१६॥
सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार ।
कपट सनेही आँगने, जानु समुंदर पार ॥१७॥
यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात ।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥१८॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं ।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥१९॥
मेरा मन तो तुज्झ से, तेरा मन कहुँ और ।
कहैं कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
ज्यों मेरा मन तुज्झ से, यों तेरा जो होय ।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥२१॥
प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गई मन माहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥२२॥
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यों घट भीतर स्वाँस ।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥२३॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार ।
दुर्जन कूम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार† ॥२४॥

---

* गर्दन । † सोना, सज्जन और साधू सौ बार भी टूट होने पर जुट जाते हैं पर दुए और मट्टी का घड़ा एकही धक्का लगने से चिरों जाते हैं ।

प्रीति ताहि सों कीजिये, जो आप समाना होय ।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहै समोय ॥२५॥
प्रेम बनिज नहिं कर सकै, चढ़ै न नाम की गैल ।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ फिरै ज्यों बैल ॥२६॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार ।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार॥२७
प्रेम पाँवरी पहिरि के, धीरज काजल देय ।
सील सिंदूर भराइ के, यों पिय का सुख लेय ॥२८॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय ।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२९॥
प्रेम भाव एक चाहिये, भेष अनेक बनाय ।
भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय ॥३०॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेस ।
बिना प्रेम पहुँचै नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ॥३१॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान ।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥३२॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय ।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥३३॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३४॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक* ।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३५॥
नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल† ।
कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल‡ ॥३६॥

* इच्छा । † अच्छा, मीठा । ‡ शराब बनाने वाला ।

कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपे सो पीवसी, नातर* पिया न जाय ॥३७॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाँड़ि जीव की बान।
माथा साटे† जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥३८॥
पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार ॥३९॥
सवै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥४०॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय ॥४१॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक ॥४२॥
यही प्रेम निरवाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तेँ न्यारा रहा, गया लहरि में पैठि ॥४३॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैं घोरि ॥४४॥
अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिँ आवै आन ॥४५॥
साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई एक बुंद से, क्या ले करूँ समुंद ॥४६॥
मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय ॥४७॥
जोई मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय।
मन सोँ मनसा ना मिलै, तो देँह मिलै का होय ॥४८॥

* नहीँ तो। † बदले।

जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥४९॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहैं कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥५०॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥५१॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिँ।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहिँ ॥५२॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥५३॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगन टेढ़ा ॥५४॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥५५॥
प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत एकंत।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत ॥५६॥
सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥५७॥
प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सब्द माहिँ तब मिलि रहै, नहिँ आवै नहिँ जाय ॥५८॥
जो तू पयासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय ॥५९॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥६०॥

प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय ।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय ॥६१॥
गुनवंता और द्रव्य की, प्रीति करै सब कोय ।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय ॥६२॥
कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर ।
बनै तो बिबिधि न राचिये, देखत लागै खोर ॥६३॥
कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास ।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ॥६४॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय ।
तन मन ता को सौंपिये, जो कबहूँ छाँड़ि न जाय ॥६५॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास ।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥६६॥
तन दिखलावै आपना, कछू न राखै गोय ।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय ॥६७॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक ।
टेक निबाहै दँह भरि, रहै सब्द मिलि एक ॥६८॥
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी* किया सरीर ।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६९॥
खेल जो मँडा खेलाड़ि से, आनँद बढ़ा अघाय ।
अब पासा काहू परौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥७०॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस ।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥७१॥

---

* गोट ।

॥ सतसंग का अंग ॥

[सज्जन के लिये]

संगति सौं सुख ऊपजै, कुसंगति सौं दुख जोय ।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥१॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन ।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ॥२॥
कबीर संगत साध की, हरै और की व्याधि ।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥३॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय ।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥४॥
कबीर संगत साध की, ज्यौं गंधी का बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥५॥
ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह ।
निस दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥६॥
कबीर संगत साध की, निरफल कधी न होय ।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥७॥
कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय ।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥८॥
मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ ।
साध संगति हरि भजन बिनु, कछू न आवै हाथ ॥९॥
साध संगति अंतर पड़ै, यह मति कबहुँ न होय ।
कहै कबीर तिहुँ लोक मैं, सुखी न देखा कोय ॥१०॥
कबीर कलह अरु कल्पना, सतसंगति से जाय ।
दुख वा से भागा फिरै, सुख मैं रहै समाय ॥११॥

साधुन के सतसंग तेँ, थरहर काँपै देँह।
कबहूँ भाव कुभाव तेँ, मत मिटि जाय सनेह ॥१२॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग मेँ, सो बैकुंठ न होय ॥१३॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल मेँ लेइ छुड़ाय ॥१४॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जन्म सुधारि ॥१५॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१६॥
कबीर लहर समुद्र की, निस्फल कधी न जाय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१७॥
जा घर गुरु की भक्ति नहिँ, संत नहीँ मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥१८॥
कबीर ता सौँ संग कर, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥१९॥
कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥२०॥
कबीर चंदन के ढिँगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास ॥२१॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥२२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥२३॥

घड़िहू की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धका न खाय ॥२४॥

[दुर्जन के लिये]

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥२५॥
हरिया जानै रूखड़ा, जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जान ही, केतहु बूड़ा मेह ॥२६॥
कबीर मूढ़क प्रानियाँ, नख सिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि ॥२७॥
पसुवा सौं पाला पर्‌यो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, घालै दूना बीज ॥२८॥
साखी सब्द बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥२९॥
चंदन परसा बावना, बिष ना तजै भुवंग।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३०॥
कबीर चंदन के निकट, नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया, यौं जनि बूड़ो कोय ॥३१॥
चंदन जैसा साध है, सर्पहिं सम संसार।
वाके अँग लपटा रहै, भाजै नाहिं बिकार ॥३२॥
भुवँगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय।
सब अँग तो बिष से भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३३॥
सत्त नाम रटिबो करै, निसि दिन साधुन संग।
कहो जो कौन बिचार तें, नाहीं लागत रंग ॥३४॥
मन दीया कहुँ औरही, तन साधुन के संग।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥३५॥

॥ कुसंग का अंग ॥

जानि बूझि साँचो तजै, करै झूठ सोँ नेह ।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मति देह ॥१॥
काँचा सेती मति मिलै, पाका सेती बान ।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति मेँ हान ॥२॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल ।
काँची सरसोँ पेरि कै, खली भया ना तेल ॥३॥
कुल टूटा काँची परी, सरा न एकौ काम ।
चौरासी बासा भया, दूरि परा सतनाम ॥४॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥५॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठि को जाय ।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥
लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास ।
निगुरा से सगुरा डरै, योँ डरपै जग से दास ॥७॥
संसारी साकट भला, कन्या क्वारी भाय ।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥८॥
साधु भया ते। क्या भया, माला पहिरी चार ।
ऊपर कली* लपेटि कै, भीतर भरी भँगार ॥९॥
कबीर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय ।
कदली† सीप भुवंग मुख, एक बूँद त्रिभाय ॥१०॥
उज्जल बूँद अकास की, परि गई भूमि बिकार ।
मूलहिँ बिनठा‡ मानई, बिन संगति भौ छार ॥११॥

---

*क़लई । †केला । ‡ गुँध या सन गया ।

हरिजन सेती रूसना, संसारी सोँ हेत ।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्याेँ कालर* का खेत ॥१२॥
गिरिये पर्बत सिखर तेँ, परिये धरनि मँझार ।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ाै काली धार ॥१३॥
मारी मरै कुसंग की, ज्याेँ केला ढिग बेर ।
वह हालै वह जीरई†, साकट संग निबेर ॥१४॥
केला तबहिँ न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि ।
अब के चेते क्या भया, काँटाेँ लीन्हा घेरि ॥१५॥
कबीर कहते क्याेँ बनै, अनबनता के संग ।
दीपक को भावै नहीँ, जरि जरि मरै पतंग ॥१६॥
ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँच न होय ।
कनक कलस मद सोँ भरा, साधन निंदा सोय ॥१७॥

॥ सूक्ष्म मार्ग का अंग ॥

उत तेँ कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय ।
इत तेँ सबही जात हैँ, भार लदाय लदाय ॥१॥
उत तेँ सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर ।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैँ तीर ॥२॥
गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार ।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार ॥३॥
कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय ।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय ॥४॥
बास सुरति लै आवई, सब्द सुरति लै जाय ।
परिचय सुति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय ॥५॥

---

* रेहार यानी रेह का । † मुरझाय ।

जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साँईं तैं सन्मुख भया, लागि कबीरा पाँय ॥६॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समक्ष लेहु मन माहिं ॥७॥
कौन देस कँह आइया, जानै कोई नाहिं।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परै येहि माहिं ॥८॥
हम चाले अमरापुरी, टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट ॥९॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥१०॥
यार बुलावै भाव सोँ, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकौं पाय ॥११॥
नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१२॥
सतगुरु दीनदयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥१३॥
अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परवेस।
तन मन धन सब छाँड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥१४॥
सब को पूछत मैं फिरा, रहन कहै नहिं कोय।
प्रीति न जोरै गुरू से, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और।
साहेब सोँ परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को आय ॥१७॥

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।
पाँव न टिकै पपीलि* का, पंडित लादे बैल ॥१८॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहईं पहुँचे जाय ॥१९॥
कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाक।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साक ॥२०॥
सुर नर थाके मुनि जना, वहाँ न कोई जाय।
मोटा† भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥२१॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिष्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥२२॥
कबीर गुरु हथियार कर, कूड़ा गली निवारि।
जो जो पंथे चालना, सो सो पंथ सँभारि ॥२३॥
अगम हूँ तैं अगम है, अपरम्पार अपार।
तहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निरधार ॥२४॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥२५॥
जेहि पैंड़े पंडित गया, तिस ही गही वहीर‡।
औघट घाटी नाम की, तहँ चढ़ि रहा कबीर ॥२६॥
घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥२७॥
बाट बिचारी क्या करै, पंथी न चलै सुधार।
राह आपनी छाँड़ि कै, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२८॥
कहँ तैं तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष का नाम ॥२९॥

* चींटी। † बड़ा। ‡ लोग, संसार।

अमर लोक तेँ आइया, सुख के सागर ठाम ।
जाति हमारि अजाति है, अमर पुरुष का नाम ॥३०॥
कहवाँ ते जिव आइया, कहवाँ जाय समाय ।
कौन डोरि धरि संचरै*, मोहिँ कहो समझाय ॥३१॥
सरगुन तेँ जिव आइया, निरगुन जाय समाय ।
सुरति डोर धरि संचरै, सतगुरु कहि समझाय ॥३२॥
ना वहँ आवागवन था, नहिँ धरती आकास ।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥३३॥
नाहीँ आवागवन था, नहिँ धरती आकास ।
हतो कबीरा दास जन, साहेब पास खवास ॥३४॥
पहुँचैँगे तब कहैँगे, वही देस की सीच† ।
अबहीँ कहा तड़ागिये‡, बेड़ी पाँयन बीच ॥३५॥
करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥३६॥
प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय ।
जीव छता§ जा मेँ मरै, सूछम लखै न सोय ॥३७॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिन मेँ सौ सौ बार ॥३८॥

॥ चेतावनी का अंग ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस ।
ना जानौँ कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥१॥

---

*घुसै, चढ़ै । †शीतल स्थान । ‡डींग मारिये । §आछत, मौजूद रहते ।

आज काल के बीच मैं, जंगल ह्वैगा बास ।
ऊपर ऊपर हल फिरैं, ढोर* चरैंगे घास ॥२॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास ।
सब जग जरता देखि कर, भये कबीर उदास ॥३॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥४॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय ।
जरा† मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥५॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥६॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥७॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥८॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत ।
सतगुरु सब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥९॥
यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यों पाली देह ।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़ै मुख खेह ॥१०॥
लूटि सकै तौ लूटि ले, सत्त नाम भंडार ।
काल कंठ तें पकड़िहै, रोकै दसौ दुवार ॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥१२॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह ।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ॥१३॥

---

* चौपाये । † बृद्ध अवस्था ।

काल्ह करै सो आज कर, सबहि साज तेरे साथ ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ ॥१४॥
काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१५॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्योँ तीतर को बाज ॥१६॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय ।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव बिपल के मायँ ॥१७॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन* यह गली, बहुरि न देखो आय ॥१८॥
जिन के नौबत बाजती, मंगल बँधते बार† ।
एकै सतगुरु नाम बिन, गये जनम सब हार ॥१९॥
पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग ।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२०॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई अरु भेरि‡ ।
अवसर चले बजाइ के, है कोइ लावै फेरि ॥२१॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान ।
सबहि उभा§ में लगि रहा, राव रंक सुल्तान ॥२२॥
इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोहि ।
राजा राना छत्रपति, क्योँ नहिं सावध‖ होहि ॥२३॥
ऊजड़ खेड़े¶ ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार ।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार ॥२४॥

---

* शहर । † बंदनवार । ‡ बाजे का नाम । § चिंता । ‖ सावधान, होशियार । ¶ गाँव ।

ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक मेँ छोड़ ॥२५॥
कहा चुनावै मेड़ियाँ[*], लंबी भीति उसारि[†]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[‡] ॥२६॥
पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिरि फिरि रोकै ठाम ॥२७॥
कबीर गर्ब न कीजिये, देँही देखि सुरंग।
बिछुरे पै मेला नहीं, ज्योँ केचलि तजै भुजंग ॥२८॥
कबीर गर्ब न कीजिये, अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥२९॥
कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देख अवास।
काल्ह परोँ भुइँ लेटना, ऊपर जमसो घास ॥३०॥
कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर ऊपर छत्र तर, तौ भी देवैँ गाड़ ॥३१॥
पक्की खेती देख कर, गर्बै कहा किसान।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥३२॥
जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिँ नाम।
ते नर पसु संसार मेँ, उपजि खपे बेकाम ॥३३॥
ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्यौहार मेँ, झूठे रंग न भूल ॥३४॥
कबीर धूल सकेलि के[§], पुड़ी[‖] जो बाँधी येह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह का खेह ॥३५॥

---

[*] मढ़ी, घर। [†] ओसारा। [‡] जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।
[§] समेट के। [‖] पुड़िया।

पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय ॥३६॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल्ह ॥३७॥
सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन।
जीव परा बहु लूट मैं, ना कछु लेन न देन ॥३८॥
मरोगे मरि जाहुगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाइ बसाहुगे, छोड़ि के बसता गाम ॥३९॥
घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥४०॥
कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल्ह।
चेत सकै तो चेतियो, मीच रही है ख्याल ॥४१॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिँ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिँ ॥४२॥
जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल।
ते बिधना बादुर* रचे, रहे उरधमुख झूल ॥४३॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि।
काया हाँड़ी काठ की, ना वह चढ़ै बहोरि ॥४४॥
सत्त नाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज।
बूड़ेगा रे बापुरा, बड़े बड़ौं की लाज ॥४५॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात।
माटी मलत कुम्हार ज्यौं, घनी सहै सिर लात ॥४६॥
कबीर या संसार मैं, घना मनुष मतिहीन।
सत्त नाम जाना नहीं, आये टापा† दीन ॥४७॥

---

* चमगादड़। † अँधेरी।

आया अनआया हुआ, जो राता संसार।
पड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥४८॥
कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥४९॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धृग जीवन संसार।
धूवाँ का सा धौलहर*, जात न लागै बार ॥५०॥
जगतहिं मैं हम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन छीजै कुल बिनसिहै, चढ़े न नाम जहाज ॥५१॥
यह तन काँचा कुंभ† है, लिये फिरै था साथ।
टपका‡ लागा फुट गया, कछु नहिं आया हाथ ॥५२॥
पानी का सा बुदबुदा, देखत गया बिलाय।
ऐसे जिवड़ा जायगा, दिन दस ठोली§ लाय ॥५३॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥५४॥
काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल होय न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥५५॥
मोर तोर की जेवरी‖, बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जा के नाम अधार ॥५६॥
जिन जाना निज गेह¶ को, सो क्यों जोड़ै मित्त**।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥५७॥
दुर्लभ मानुष जनम है, देँह न बारम्बार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै, बहुरि न लागै डार ॥५८॥

* धरहरा। † घड़ा मिट्टी का। ‡ ठोकर। § ठठोली, हँसी। ‖ रस्सी।
¶ घर। ** मित्र।

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥५९॥
जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार ।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥६०॥
बनजारा का बैल ज्योँ, टाँडा* उतर्‍यो आय ।
एकन को दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥६१॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो राख बहोर ।
खाली हाथौँ वे गये, जिनके लाख करोर ॥६२॥
आस पास जोधा खड़े, सबी बजावैँ गाल ।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥६३॥
हाँकोँ† परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय ।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥६४॥
या दुनिया मैँ आइ के, छाँड़ि देइ तू ऐँठ ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैँठ ॥६५॥
यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत ।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥६६॥
तन सराय मन पाहरू‡, मनसा उतरी आय ।
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखा ठोँक बजाय ॥६७॥
मैँ मैँ बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भाग ।
कहैँ कबीर कब लगि रहै, रूई लपेटी आग ॥६८॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥६९॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन ।
तन माटी मिलि जायगा, ज्योँ आटे मेँ नोन ॥७०॥

* लदनी । † आवाज़ से । ‡ पहरेदार ।

जनम मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिन जिन पंथौं चालना, सोई पंथ सम्हार ॥७१॥
कबीर खेत किसान का, मिरगौं खाया झाड़।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करै नहिं बाड़* ॥७२॥
बासर† सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहिँ।
जे नर बिछुड़े नाम से, तिन को धूप न छाहिँ ॥७३॥
कबीर सोता क्या करै, क्यौं नहिं देखै जाग।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के संग लाग ॥७४॥
कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार‡।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥७५॥
कबीर सोता क्या करै, सोते होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥७६॥
अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय।
ना जानौं छिन एक में, किस का पहरा होय ॥७७॥
चकवी बिछुरी रैन की, आनि मिलै परभात।
जे नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥७८॥
दीन गँवायो दुनी सँग, दुनी न चाली साथ।
पाँव कुलहाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥७९॥
कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल§ को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय ॥८०॥
दुनिया के धोखे मुवा, चाला कुल की कानि।
तब क्या कुल की लाज है, जब ले धरै मसान ॥८१॥

---

* टट्टी जो बचाव के लिये खेत के चारों ओर लगाते हैं; रखा।
† दिन। ‡ दयाल। § कुल से रहित।

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥८२॥
उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिँ।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिँ ॥८३॥
मलमल खासा पहिरते, खाते नागर पान।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥८४॥
गोफन* माहीं पौढ़ते, परिमल† अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥८५॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥८६॥
कबीर बेड़ा‡ जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए§ तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥८७॥
डागल ऊपर दौड़ना, सुख नींदड़ी न सोय।
पुन्नौं पाया दिवसड़ा, ओछी ठौर न खोय ॥८८॥
मैं भँवरा तोहिँ बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥८९॥
बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाड़ी की आस ॥९०॥
दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरू सौं, कै साधन कौ संग ॥९१॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥९२॥
भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय ॥९३॥

* गुफा। † सुगंधि। ‡ नाव। § हलके हलके।

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥९४॥
खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता मेँ कौन सवाद ॥९५॥
यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरे भागि ॥९६॥
यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुआ मत हार ॥९७॥
बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोँछ[*]।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोँछ ॥९८॥
यह मन फूला बिषय बन, तहाँ न लाओ चोत।
सागर क्योँ ना उड़ि चलो, सुनो बैन मन मीत ॥९९॥
कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय।
अब की बेरिया चेतिहै, सो साहेब का होय ॥१००॥
मनुष जनम नर पाइकै, चूकै अब की घात।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात ॥१०१॥
लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय[†]।
ऐसे जियरा जम लुटै, भेँड़हिँ लुटै कसाय[‡] ॥१०२॥
ऐसी गति संसार की, ज्योँ गाड़र की ठाट[§]।
एक पड़ा जेहि गाड़[‖] मेँ, सबै जायँ तेहि बाट ॥१०३॥

---

*बैल का जन्म होना चाहिये था पर बिधना सींग और पोँछ लगाना भूल गया जिस से मनुष्य की सूरत बन गई फिर जो भगवंत भजन न किया तो ऐसी दाढ़ी और मोँछ को धिक्कार है। † अलग होके, बेपरवाह होके। ‡जैसे बकरे को कसाई मारता है ऐसे ही निर्दईपन से जम तुम्हारा बध करैगा। § भेँड़ का झुंड। ‖ गड़हा।

भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय ।
मानुष जनमहिं पाय नर, काहे को जहँड़ाय* ॥१०४॥
धोखे धोखे जुग गया, जनमहिं गया सिराय† ।
थिति‡ नहिं पकड़ी आपनी, यह दुख कहाँ समाय ॥१०५॥
केतो कहौं बुझाइ के, पर हथ जीव बिकाय ।
मैं खैंचौं सतलोक को, सीधा जमपुर जाय ॥१०६॥
तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥१०७॥
ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जीव अरु देह ।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्यों खेह ॥१०८॥
एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस§ ।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥१०९॥
जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार ।
चेता‖ होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार¶ ॥११०॥
कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ बेवहार ।
एक नाम जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ॥१११॥
मुए हौ मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल ।
स्वप्न सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल ॥११२॥
नाथ मछंदर ना बचे, गोरखदत्त औ ब्यास ।
कहै कबीर पुकारि के, परे काल के फाँस ॥११३॥
झूठ झूठ कँह डारहू, मिथ्या यह संसार ।
तेहिं कारन मैं कहत हौं, जातें होय उबार ॥११४॥
झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत ।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत ॥११५॥

---

* ठगाय । †बीत । ‡स्थिरता । §हिर्स । ‖समझदार । ¶धाड़=डाका ।

बहुतै तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय ।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गोहराय ॥११६॥
खाते पीते जुग गया, अजहुँ न चेतो आय ।
कहै कबीर पुकारि कै, जीव अचेते जाय ॥११७॥
परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिँ बानि ।
जो जानै सो बाचिहै, होत सकल की हानि ॥११८॥
पाँच तत्त का पूतरा, मानुष धरिया नाम ।
एक तत्त के बीछुरे, बिकल भया सब ठाम ॥११९॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिँ ।
घर की नारी* को कहै, तन की नारी† जाहिँ ॥१२०॥
भँवर बिलंबे‡ बाग मेँ, बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे बिषय मेँ, अंतहुँ चले निरास ॥१२१॥
काल खड़ा सिर ऊपरे, तैँ जागु बिराने मिंत§ ।
जा का घर है गैल मेँ, क्योँ सोवै निःचिंत ॥१२२॥
काया काठी काल घुन, जतन जतन घुन खाय ।
काया ब्रह्म काल बस, मर्म न कोऊ पाय ॥१२३॥
चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट‖ भीतर आइके, साबित गया न कोय ॥१२४॥
काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात ।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता मेँ जीव पिसात ॥१२५॥
आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय ।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय¶ ॥१२६॥

---

* स्त्री । † नाड़ी । ‡ आशक्त हुए । § मित्र । ‖ चक्की के दो पल्ले ।
¶ मुँह से सभी कहते हैँ कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीँ मानता नहीँ तो कीला जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात भगवंत को ऐसा दृढ़ कर पकड़ै कि आवागवन से रहित हो जाय ।

चक्की चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि ।
रूढ़ा[*] सब्द कबीर का, डारा पाट उखारि ॥१२७॥
साहू से भा चोरवा, चोरन से भयो गुज्झ ।
तब जानैगो जीयरा, मार पड़ैगी तुज्झ ॥१२८॥
सेमर सुवना सेइया, दुइ ढैंढ़ी की आस ।
ढैंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥१२९॥
मूए हौ मरि जाहुगे, बिन सर थोथे भाल ।
परेहु कराइल[†] वृच्छ तर, आजु मरहु की काल्ह ॥१३०॥
धरती करते एक पग, समुँदर करते फाल[‡] ।
हाथन परवत तौलते, तिनहूँ खाया काल ॥१३१॥
नाम न जानै गाँव का, भूला मारग जाय ।
काल्ह गड़ैगा काँटवा, अगमन[§] कस न कराय ॥१३२॥
आज काल्ह दिन एक मैं, इस्थिर नाहिं सरीर ।
कह कबीर कस राखि है, काँचे बासन नीर ॥१३३॥
सतगुरु बचन सुनो हो संतो, मत लीजै सिर भार ।
हौं हजूर ठाढ़ो कहत, अब तैं सम्हरि सम्हार ॥१३४॥
पूरब ऊगै पच्छिम अथवै[‖], भखै पवन का फूल ।
राहु गरासै ताहु को, मानुष काहें भूल ॥१३५॥
जीव मर्म जानै नहीं, अँध भया सब जाय ।
बादी[¶] द्वारे दाद[**] नहिं, जनम जनम पछिताय ॥१३६॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब ।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब ॥१३७॥

---

[*] बलवान । [†] करील या टैंटी की झाड़ जो काँटेदार होती है और पत्ती नहीं होती । [‡] फाँद या लाँघ जाना । [§] आगे से चेतना । [‖] डूबै अर्थात् सूरज । [¶] मुद्दई यानी काल । [**] न्याव ।

टक टक गया जोवता, पल पल गया विहाय ।
जीव जँजाले पड़ि रहा, जमहिँ दमाम बजाय* ॥१३८॥
मैँ इकला ये दोइ जना†, साथी नाहीँ काय‡ ।
जो जम आगे ऊबरौँ, (तौ) जरा पहूँचै आय ॥१३९॥
जरा कुत्ती जोबन ससा, काल अहेरी लार§ ।
अबकी छिन मेँ पकरिहै, गरबै कहा गँवार ॥१४०॥
काल हमारे सँग रहै, कस जीवन की आस ।
दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लग पिंजर साँस ॥१४१॥
आठ पहर योँही गया, माया मोह जँजाल ।
सत्तनाम हिरदे नहीँ, जीति लिया जम काल ॥१४२॥
कबीर पाँच पखेरुआ, राखे पोष‖ लगाय ।
एक जो आयो पारधी¶, ले गयो सबै उड़ाय ॥१४३॥
मंदिर माहीँ झलकती, दीवा की सी जोति ।
हंस बटाऊ** चलि गया, काढ़ो घर का छोति†† ॥१४४॥
बारी बारी आपने, चले पियारे मित्त ।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवै नित्त ॥१४५॥

---

* आसरा ताकते २ समय बीत गया, जीव जंजाल में फँस रहा और उधर से जमराज ने नगाड़ा कूच का बजा दिया । † जरा (अर्थात् जरजर अवस्था बुढ़ापे की) और मरन । ‡ कोई । § जवानी रूपी खरगोस के पीछे वृद्धाई रूपी कुतिया उसके तोड़ डालने को लगी है और साथ ही उसके काल शिकारी है सो तेरे इस मनुष्य जन्म को भी छिन में नष्ट कर देगा तू किस घमंड में भूला है । ‖ पालन पोषन । ¶ शिकारी । ** बटोही । †† प्राण के निकलते ही घर की छूत निकालने को उसे धोते हैं ।

माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकारि।
फूली फूली चुनि लिये, कालिह हमारी बारि* ॥१४६॥
परदे रहती पदमिनी, करती कुल की कानि।
छड़ी जो पहुँची काल की, ढेर भई मैदान ॥१४७॥
मछरी दह† छोड़ौ नहीं, धीमर‡ तेरो काल।
जेहिं जेहिं डावर§ घर करौ, तहँ तहँ मेलै जाल ॥१४८॥
पानी में की माछरी, क्योँ तैं पकर्‌यो तीर।
कड़िया खटकी जाल की, आइ पहूँचा कीर‖ ॥१४९॥
हे मतिहीनी माछरी, राख न सकी सरीर।
सो सरवर सेया नहीं, (जहँ) जाल काल नहिं कीर ॥१५०॥
हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय।
करि समुद्र सौं रूसना, छीलर¶ चित्त दियाय ॥१५१॥
काँची काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत।
ज्योँ ज्योँ नर निधड़क फिरत, त्योँ त्योँ काल हसंत ॥१५२॥
टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।
ना गुरु भज्यो न खत कट्यो**, काल पहूँचा आय ॥१५३॥
कबीर पैंड़ा†† दूर है, बीच पड़ी है रात।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगे तैं परभात‡‡ ॥१५४॥

* पारी। † कुंड, गहिरा पानी। ‡ कहार या मल्लाह जो मछली पकड़ता है। § पानी का गढ़ा। ‖ कीर नाम किरात अर्थात भिल्ल जाति का है जो शिकार करके खाते हैं। हे मछली जिसका तालाब के बीच में स्थान था तू क्योँ किनारे आई जिससे जाल में फँस गई। ¶ छिछला पानी। ** कर्म की रेखा नहीं कटी या लेखा नहीं चुका। †† रास्ता। ‡‡ सबेरा।

हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल ।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरि लै गया काल ॥१५५॥
चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार ।
खिड़की खिड़की पाहरू, गज बंधा दरबार ॥१५६॥
चहुँ दिस सूरा बहु खड़े, हाथ लिये हथियार ।
रहि गये सबही देखते, काल ले गया मार ॥१५७॥
संसय काल सरीर में, बिषम* काल है दूर ।
जा को कोई ना लखै, जारि करै सब धूर ॥१५८॥
दव[†] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार ।
अब जो जावँ लोहार घर, डाहै दूजी बार ॥१५९॥
मेरा बीर[‡] लोहारिया, तू मत जारै मोहिं ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं ॥१६०॥
जरनेहारा भी मुआ, मुआ जरावनहार ।
हैहै करते भी मुए, का सों करौं पुकार ॥१६१॥
भाई बीर बटाउआ, भरि भरि नैनन रोय ।
जा का था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१६२॥
निःचय काल गरासही, बहुत कहा समझाय ।
कहै कबीर मैं का कहौं, देखत ना पतियाय ॥१६३॥
मरती बेरिया पुन[§] करै, जीवत बहुत कठोर ।
कहै कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँड़े चोर[‖] ॥१६४॥
कबीर बैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई बाहिं ।
बैद न बेदन[¶] जानही, कफफ करेजे माहिं ॥१६५॥

---

* कठिन । [†] अगिन । [‡] भाई । [§] पुन्य दान । [‖] जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे । [¶] दुक्ख, दरद ।

कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि[*] ।
आप आप को काटि है, कहै कबीर बिचारि ॥१६६॥
कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाँड़ै ओट ।
घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥१६७॥
महलन माहीं पौढ़ते, परिमल अंग लगाय ।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥१६८॥
जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय ।
ते भी होते मानवा, करते रँग रलियाय ॥१६९॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय ।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥१७०॥
जा को रहना उत्त घर, सो क्यों लोड़ै[†] इत्त ।
जैसे परघर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥१७१॥
ज्यों कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर ।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तो दौर ॥१७२॥
कोठे ऊपर दौरना, सुख नींदरी न सोय ।
पुन्ये पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१७३॥
मैं मैं मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि ।
मेरी पग का पैकड़ा[‡], मेरी गल की फाँसि ॥१७४॥
मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बँधै, जा के नाम अधार ॥१७५॥
कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[§] खेवनहार ।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७६॥
कबीर नाव तो झाँझरी, भरी बिराने भार ।
खेवट सों परिचय नहीं, क्योंकर उतरै पार ॥१७७॥

[*] कुल्हाड़ी । [†] चाहै या चाह करै । [‡] बेड़ी । [§] कुटिल ।

कायथ[*] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वाँस सरीर मेँ, तब लगि नाम सँभार ॥१७८॥
कबीर रसरी पाँव मेँ, कहा सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७९॥
राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गयंद[†]।
मनुष जन्म कब पाइहौं, भजिहौं परमानंद ॥१८०॥
मनुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१८१॥
काल चिचावत[‡] है खड़ा, तू जाग पियारे मिंत।
नाम सनेही जगि रहा, क्योँ तू सोय निचिंत ॥१८२॥
जरा आय जोरा किया, निय आपन पहिचान।
अंत कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान ॥१८३॥
बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[§]।
बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिँ ठौर ॥१८४॥
घड़ी जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तेँ होय ॥१८५॥
कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत।
जनम मरन होवै नहीँ, तौ बूझौ कुसलंत ॥१८६॥
पात झरंता यौँ कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैँ, दूर परैँगे जाय ॥१८७॥
जो ऊगे सो अत्थवै[‖], फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै[¶] सो मरि जाय ॥१८८॥

---

[*] चित्रगुप्त। [†] हाथी। [‡] चिल्लाता है। [§] सफ़ेद। [‖] अस्त होय, डूबै।
[¶] जमै।

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेत न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८९॥
तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल।
सकल जीव सावज* भये, एक अहेरी काल ॥१९०॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१९१॥
यह जिव आया दूर तैं, जाना है बहु दूर।
बिच के बासे बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१९२॥
कबीर गाफिल क्या फिरै, आया काल नजीक।
कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहिं खटीक† ॥१९३॥
बालपना भोले गयो, और जुवा महमंत।
वृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१९४॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥१९५॥
काया काठी काल घुन, जतन जतन घुन खाय।
काया माहीं काल है, काहू मरम न पाय ॥१९६॥
घाट जगाती धरमराय, सब का झारा लेय।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देय ॥१९७॥
जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन।
पुरुष खज़ाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१९८॥
खुलि खेलो संसार मैं, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट‡ न होय ॥१९९॥

---

* शिकार। † जैसे बकरी को खटिक ले जाता है। ‡ कर्म का बोझ।

॥ उदारता का अंग ॥

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥१॥

बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम* पात।
ता तैं नव पल्लव† भया, दिया दूर नहिं जात ॥२॥

जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन कौ काम ॥३॥

हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अक़ल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥४॥

कहै कबीरा देय तू, जब लगि तेरी देह।
देह खेह होइ जायगी, तब कौन कहैगा देह ॥५॥

गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥६॥

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥७॥

दान दिये धन ना घटै, नदी न घहै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥८॥

सतही में सत बाँटई, रोटी में तैं टूक।
कहैं कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥९॥

---

* पेड़। † पत्तियाँ।

॥ सहन का अंग ॥

काँच कथीर अधीर नर, जलन करत है अंग ।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥१॥
काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम ।
कह कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम* ॥२॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सब्द सुनाय ।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥३॥

॥ बिश्वास का अंग ॥

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंता क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥१॥
साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाना लेय ।
आगे पाछे हरि खड़े, जब माँगै तब देय ॥२॥
चिंता न कर अचिंत रहु, देनहार समरत्थ ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिन के गाँठ न हत्थ ॥३॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोक† ।
यौं करता सब की करै, पालै तीनिउ लोक ॥४॥
पौ फाटी पगरा‡ भया, जागे जीवा जून ।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून ॥५॥
सत्त नाम सौं मन मिला, जम सौं परा दुराय ।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥६॥

---

* सोना । † परवरिश । ‡ सबेरा ।

कर्म करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय ॥७॥
साँईं इतना दीजिये, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥८॥
जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झक झोलही, तऊ न है चित भंग ॥९॥
खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलैंगे आय।
अजया* गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय ॥१०॥
पाँडर† पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास ॥११॥
पद गावे लौलीन है, कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना बिस्वास ॥१२॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये तें दूरि।
जिन गाया बिस्वास गहि, ता के सदा हजूरि ॥१३॥
गावनही में रोवना, रोवनही में राग।
एक बनहिं में घर करै, एक घरहिं बैराग ॥१४॥
जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्योँ ना जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय ॥१५॥
बिस्वासी होय गुरु भजै, लोहा कंचन होय।
नाम भजै अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय ॥१६॥

॥ दुबिधा का अंग ॥

दुबिधा जा के मन बसै, दयावंत जिव नाहिं।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिं ॥१॥

---

* बकरी। † चमेली के पेड़ की एक जाति।

हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तौ तबही देखई, दुविधा देइ बहाय ॥२॥
पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल ।
कह कबीर का सोँ कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥३॥
चींटी चावल लै चली, बिच मेँ मिलि गइ दार*।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥४॥
आगा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय ।
सो बासी जम लोक का, बाँधा जमपुर जाय ॥५॥
सत्त नाम कड़ुआ लगै, मीठा लागै दाम ।
दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥६॥
तकत तकावत रहि गया, सका न बेझा† मारि ।
सबै तीर खाली परा, चला कमाना डारि ॥७॥
नगर चैन तब जानिये, जब एकै राजा होय ।
याहि दुराजी‡ राज में, सुखी न देखा कोय ॥८॥
संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध ।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध॥९॥

॥ मध्य का अंग ॥

पाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यौं का त्यौं भरपूर ॥१॥
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन ।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥२॥

---

* दाल । † निशाना । ‡ माया और ब्रह्म ।

लेउँ तो महा पतिग्रह, देऊँ तो भोगंत।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज संत ॥३॥
हिंदू कहूँ तौ मैं नहीं, मुसल्मान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं ॥४॥
गैबी आया गैब तें, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, तब कहँ रहिया ऐब ॥५॥
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥६॥

॥ सहज का अंग ॥

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥१॥
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै बिषया तजै, सहज कहावै सोय ॥२॥
सहजै सहजै सब भया, मन इंद्री का नास।
निःकामी सों मन मिला, कटी करम की फाँसि ॥३॥
सहजै सहजै सब गया, सुत बित काम निकाम।
एकमेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा नाम ॥४॥
जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान।
कड़ुआ लागै नीम सा, जा में ऐंचा तान ॥५॥
सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कहै कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचा तानि ॥६॥
काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥७॥

जो कलपै तो दूर है, अनकलपे है सोय ।
सतगुरु मेटी कलपना, सहजै होय सो होय ॥८॥

॥ अनुभव ज्ञान का अंग ॥

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात ।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद ॥१॥
ज्यौं गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान ।
त्यौं ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान ॥२॥
नर नारी के स्वाद को, खसी* नहीं पहिचान ।
तत† ज्ञानी के सुक्ख को, अज्ञानी नहिं जान ॥३॥
आतम अनुभव सुक्ख की, का कोइ बूझै बात ।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥४॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष विषाद ।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तज करि बाद विबाद ॥५॥
कागद लिखै सो कागदी, की व्योहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ॥७॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात ।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पड़ी बरात ॥८॥
भरो होय सो रीतई, रीतो‡ होय भराय ।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय ॥८॥

---

* हिजड़ा । † तत्व । ‡ ख़ाली ।

॥ वाचक ज्ञान का अंग ॥

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान ॥१॥
अँधरन को हाथी सही, हैं साँचे सगरे ।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥२॥
ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय ।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥३॥
ज्ञानी तो निर्भय भया, माने नाहीं संक ।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगते नर्क निसंक ॥४॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता ।
ता तें संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥५॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप ।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर बस्तु अनूप ॥६॥
भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक ।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहर एक ॥७॥
समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिं ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिं ॥८॥

॥ करनी और कथनी का अंग ॥

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय ।
कथनी तजि करनी करै, तो बिष से अमृत होय ॥१॥
करनी गर्ब-निवारनी, मुक्ति स्वारथी सोय ।
कथनी तजि करनी करै, तौ मुक्ताहल होय ॥२॥

करनी बपुरी क्या करै, नाम न होय सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सोइ सोइ नय नय जाय ॥३॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर ॥४॥
कथनी बदनी छाँड़ि के, करनी सोँ चित लाय।
नरहिँ नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय ॥५॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्योँ भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥६॥
करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातौँ के पकवान से, धापा नाहीँ कोय ॥७॥
लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥८॥
पढ़ि औरन समझावई, मन नहिँ बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यौँ कहि दास कबीर ॥९॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीँ, और बँधावत धीर ॥१०॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी ॥११॥
कथनी कर फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीँ, अंधा मूढ़ गँवार ॥१२॥
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार ॥१३॥
पद जोरै साखी कहै, साधन परि गई रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीँ, काढ़ि पियन की हौँस ॥१४॥

करनी को रज[*] मानही, कथनी मेरु[†] समान।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान ॥१५॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिं ॥१६॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल ॥१७॥
कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिं सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सो सो निव लिव जाय ॥१८॥
करनी करनी सब कहै, करनी माहिं बिवेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिं परखै एक ॥१९॥
कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलावंत[‡] का कोट ज्यौं, देखत ही ढहि जाय ॥२०॥
कथनी काँची हो गई, करनी करी न सार।
स्रोता बक्ता मरि गये, मूरख अनँत अपार ॥२१॥
कूकस[§] कूटै कन[‖] बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्यौं बंदूक गोली बिना, भड़क न मारै आन ॥२२॥
कथनी को धीजूँ[¶] नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ थकी, तब महल पधारे पीव ॥२३॥
कथते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
मुहँड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार ॥२४॥
कथते हैं करते सही, साँच सरोतर सोय।
साहिब के दरबार में, आठ पहर सुख होय ॥२५॥
कबीर करनी आपनी, कबहुँ न निस्फल जाय।
सात समुँद आड़ा पड़ै, मिलै अगाऊ आय ॥२६॥

---

[*] धूल, ज़र्रा। [†] पहाड़। [‡] बाज़ीगर। [§] भूसी। [‖] ग़ल्ला, नौंगी। [¶] चाहूँ।

जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट ।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥२७॥
चोर चोराई तूँबड़ी, गाड़े पानी माहिँ ।
वह गाड़े तेँ ऊछलै, योँ करनी छानी* नाहिँ ॥२८॥
कथनी के तो भानि कै, करनी देइ लहाय ।
दास कबीरा योँ कहै, ऐसा होय तो आय ॥२९॥
साखी कहै गहै नहीँ, चाल चली नहिँ जाय ।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीँ ठहराय ॥३०॥
जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय ।
बिन सतगुरु की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय ॥३१॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीँ दोस ।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥३२॥

॥ सार गहनी का अंग ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥१॥
पहिले फटकै छाँटि कै, थोथा सब उड़ि जाय ।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय ॥२॥
सतसंगति है सूप ज्योँ, त्यागै फटकि असार ।
कहै कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिँ बिकार ॥३॥
औगुन को तो ना गहै, गुनही को लै बीन ।
घट घट महकै† मधुप‡ ज्योँ, परमातम लै चीन ॥४॥
हंसा पय को काढ़ि ले, छीर नीर निरवार ।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥५॥

---

* छिपी, ढकी । † सूँघै । ‡ भँवरा ।

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का छाननहार ॥६॥
पारा कंचन काढ़ि लै, जो रे मिलावै आन।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥७॥
रक्त छाँड़ि पय को गहै, जो रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाँड़ै गुन गहै, सार-गराही* लच्छ ॥८॥

॥ असार गहनी का अंग ॥

कबीर कीट सुगंधि तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥१॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल बस्तुहिँ छाँड़ि।
कहै कबीर असार मति, माँड़ि रहा मन माँड़ि ॥२॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाँड़ि कै, करै असार अहार ॥३॥
पापी पुन्न न भावई, पापहिँ बहुत सुहाय।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुर्गंध तहँ जाय ॥४॥
रसहिँ छाँड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिँ सार तजि, हिरदे नाहिँ बिबेक ॥५॥
दूध त्यागि रक्तै गहै, लगी पयोधर† जौंक।
कहै कबीर असार मति, लच्छन राखै कोक‡ ॥६॥
निर्मल छाँड़ै मल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बिगोय ॥७॥
बूटी बाटी पान करि, कहे दुःख जो जाय।
कहै कबीर सुख ना लहै, यही असार सुभाय ॥८॥

---

* सार-ग्राही। † थन। ‡ सरहंस जिसका अहार मछली है।

॥ पारख का अंग ॥

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुन को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥१॥
हरि हीरा जन जौहरी, लै लै माँडी हाट ।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट ॥२॥
कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय ।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय ॥३॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट ।
कस करि बाँधो गाठरी, उठ करि चालो बाट ॥४॥
एकहि बार परखिये, ना वा बारम्बार ।
बालू तौहू किरकिरी, जो छानै सौ बार ॥५॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काचे धाग ।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि ॥६॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहिं परखै साध ।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध ॥७॥
हीरा पाया परखि के, घन में दीया आनि ।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि ॥८॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यौं पतियाय ।
काँकर माथा न नवै, मोती मिलै तो खाय ॥९॥
हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा आय ।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यों पतियाय ॥१०॥
हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिं ।
बगा ढँढोरे माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥११॥

गावनिया के मुख बसौं, स्रोता के मैं कान।
ज्ञानी के हिरदे बसौं, भेदी का निज प्रान ॥१२॥
कीर्तनिया सोँ कोस बिस, सन्यासी सोँ तीस।
गिरही के हिरदे बसौं, बैरागी के सीस ॥१३॥

॥ अपारख का अंग ॥

चंदन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास ॥१॥
एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी, कौड़ी बदले जाय ॥२॥
हीरा साहेब नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥३॥
बाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सब्द का, गाहक आगे खोल ॥४॥
नाम रतन धन पाइकै, गाँठि बाँधि ना खोल।
नाहिं पटन नहिं पारखी, नहिं गाहक नहिं मोल ॥५॥
जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिं।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सब्द की बाहिं ॥६॥
कबीर खाँड़हिं छाँड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय ॥७॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी* चाम चटाय ॥८॥

---

* असंतुष्ट हुई।

कबीर साहेब का साखी-संग्रह

[भाग २]

॥ नाम का अंग ॥

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥१॥
आदि नाम बीरा* अहै, जीव सकल लेव बूझि ।
अमरावै सतलोक लै, जम नहिं पावै सूझि ॥२॥
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस ।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो वंस ॥३॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार† ।
कहै कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥४॥
कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय ।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥५॥
राम राम सब कोइ कहै नाम न चीन्है कोय ।
नाम चीन्ह सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
नाम-सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय ॥७॥
ओंकार निस्चय भया, सो करता मत जान ।
साँचा सब्द कबीर का, परदे में पहिचान ॥८॥

---

* पान परवाना; हुक्मनामा । † शाखा ।

जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥९॥
नाम रतन धन पाइ कै, गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन* नहिं पारखू, नहिं गाहक नहिं मोल ॥१०॥
नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिं।
सेंतमेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं ॥११॥
सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥१२॥
जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास ॥१३॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय ॥१४॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तें सदा निहाल।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥१५॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मंड ॥१६॥
नाम रतन सोइ पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहिं होय।
ज्ञान बिना नहिं पावई, कोटि करै जो कोय ॥१७॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥१८॥
एक नाम को जानि कै, मेट करम का अंक।
तबहीं सो सुचि† पाइहै, जब जिव होय निसंक ॥१९॥
एक नाम को जान करि, दूजा देइ बहाय।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥२०॥

* दाम। † पवित्रता।

जैसे फनपति[*] मंत्र सुनि, राखै फनहिँ सिकोरि ।
तैसे बौरा नाम तेँ, काल रहै मुख मोरि ॥२१॥
सब को नाम सुनावहूँ, जो आवैगो पास ।
सब्द हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२२॥
होय बिबेकी सब्द का, जाय मिलै परिवार ।
नाम गहै सो पहूँचै, मानहु कहा हमार ॥२३॥
सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास ।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखौ बिस्वास ॥२४॥
अस अवसर नहिँ पाइहौ, धरौ नाम कढ़िहार[†] ।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥२५॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निरास ।
पानी माहीं घर करै, तौ हू मरै पियास ॥२६॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी, ज्यौं चौपर की सार[‡] ॥२७॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार ।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥२८॥
कोटि कर्म कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव ।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम बिनु ठाँव ॥२९॥
कबीर सतगुरु नाम में, सुरति रहै सरसार[§] ।
तो मुख तेँ मोती झरै, हीरा अनँत अपार ॥३०॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय ।
औषधि खाय अरु पथ[‖] रहै, ता की बेदन जाय ॥३१॥
कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और ।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥३२॥

[*] साँप । [†] निकालने वाला । [‡] गोट । [§] मस्त । [‖] पहरेज़ी खाना ।

सुपनहु में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी*, मेरे तन को चाम ॥३३॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ॥३४॥
जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥३५॥
हय गय औरौ सघन घन, छत्र ध्वजा फहराय।
ता सुख तें भिच्छा भली, नाम भजन दिन जाय ॥३६॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देँह केहि काम की, जा सुख नाहीं नाम ॥३७॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो बेद ॥३८॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब जाय पारस भेँटिहै, तब जिव होसी सीव ॥३९॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥४०॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥४१॥
कबीर सतगुरु नाम सौं, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा†, केता काठ जराय ॥४२॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥४३॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय ॥४४॥

* जूती। † आग।

नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप ।
बेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप ॥४५॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चित चक्कमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥४६॥
नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास ।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥४७॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम की लूटि ।
पाछे फिरि पछिताहुगे, प्रान जाहिं जब छूटि ॥४८॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है ।
यह निज मुक्ति सँदेस, सुनो संत सत भाव से ॥४९॥
क्यौं छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया ।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से ॥५०॥
काटहु जम के फंद, जेहिं फंदे जग फंदिया ।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो ॥५१॥
तजै काग की देँह, हंस दसा की सुरति पर ।
मुक्ति सँदेसा येह, सत्त नाम परमान अस ॥५२॥
सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै ।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥५३॥

॥ सुमिरन का अंग ॥

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय ।
कह कबीर सुमिरन किये, साँई माहिं समाय ॥१॥

राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़ौं बड़ा, जो सुमिरै निःकाम ॥२॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम ॥३॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥४॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फिरियाद ॥५॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निस दिन आठो जाम ॥६॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हाले डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार ॥७॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सुरभी* सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥८॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेय सम्हाल ॥९॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद कुरंग†।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग ॥१०॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग ॥११॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारै आप को, होय जाय तेहि रंग ॥१२॥

---

* गऊ। † मृग।

सुमिरन सोँ मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन ॥१३॥
सुमिरन सुरत लगाइ के, मुख तेँ कछू न बोल ।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥१४॥
माला फेरत मन खुसी, ता तेँ कछू न होय ।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय ॥१५॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥१६॥
अजपा सुमिरन घट बिषे, दीन्हा सिरजनहार ।
ताही सोँ मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार ॥१७॥
कबीर माला मनहिँ की, और संसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलैँ, तो गले रहट के देख ॥१८॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर ।
माला स्वाँस उस्वाँस की, जा मेँ गाँठ न मेर ॥१९॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत है मोय ।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥२०॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहुँ ओर ।
जेहि फेरे साँईँ मिलै, सो भया काठ कठोर ॥२१॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिँ खोय ।
गुरु चरनन चित राखिये, तो अमरापुर जोय ॥२२॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम ।
कहा महोला खलक सोँ, पड़ा धनी सोँ काम ॥२३॥
सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिँ ।
सुरत सब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिँ ॥२४॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिँ ।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिँ ॥२५॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय ।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥२६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
सुरत समानी सब्द में, ताहि काल नहिँ खाय ॥२७॥
जा की पूँजी स्वाँस है, छिन आवै छिन जाय ।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥२८॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कही बजाये ढोल ।
स्वाँसा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२९॥
ऐसे महँगे मोल का, एक स्वाँस जो जाय ।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥३०॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग ।
या को टुकड़ा डारि कर, सुमिरन करो निसंक ॥३१॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास ।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥३२॥
सत्तनाम के सुमिरते, उधरे पतित अनेक ।
कहैं कबीर नहिँ छाँड़िये, सत्तनाम की टेक ॥३३॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत ।
छेरी के गल गलथना, जा में दूध न सूत ॥३४॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि ।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जानि ॥३५॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन ।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३६॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३७॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वाँस उस्वाँस जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥३८॥
माला स्वाँस उस्वाँस की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करम की फाँस ॥३९॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम सोँ योँ कह्यो, सुमिरन करो समाय ॥४०॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४१॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबिरा सुमिरन सार ॥४२॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै तन सुख होय ॥४३॥
साँईं योँ मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त ॥४४॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबिरा जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं ॥४५॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अविचल नाम ॥४६॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवत नाहिं।
सुमिरन मन को प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥४७॥
जिन हरि जैसा सुमिरिया, ता को तैसा लाभ।
ओसै प्यास न भागई, जब लगि धसै न आभ* ॥४८॥

* आब=पानी।

BVCL 04115

कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिँगे छूटि ।
घर के प्यारे आदमी, चलते लेँगे लूटि ॥४९॥
कबिरा निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति ।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥५०॥
जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय ।
तारा मंडल छाँड़ि के, जहाँ नाम तहँ जाय ॥५१॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय* ।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥५२॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम ।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम ॥५३॥
सत्त नाम को सुमिरना हँसि कर भावै खीज† ।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्योँ बीज ॥५४॥
स्वाँस सुफल सो जानिये, जो सुमिरन मेँ जाय ।
और स्वाँस योँही गये, करि करि बहुत उपाय ॥५५॥
कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिँ ।
स्वाँस स्वाँस सुमिरन करौ, और जतन कछु नाहिँ ॥५६॥
जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय ।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥५७॥
बिना साँच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय ।
पारस मेँ परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥५८॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर ।
झूठा आल जँजाल तजि, पकड़ो साँच कबीर ॥५९॥

---

* आग । † चाहे हँसते हुए चाहे खिजलाहट के साथ ।

हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल* ।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥६०॥
सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय ।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निरफल जाय ॥६१॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम ।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥६२॥
नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरति सब्द एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥६३॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय ।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥६४॥

॥ शब्द का अंग ॥

कबीर सब्द सरीर में, बिन गुन† बाजै ताँत ।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तें छूटी भ्रांति ॥१॥
जो जन खोजी सब्द का, धन्य संत है सोय ।
कह कबीर सब्दै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय ॥२॥
सब्द सब्द बहु अंतरा, सब्द सार का सीर ।
सब्द सब्द का खोजना, सब्द सब्द का पीर ॥३॥
सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द चित देय ।
जा सब्दै साहेब मिलै, सोई सब्द गहि लेय ॥४॥
सब्द सब्द सब कोइ कहै, वो तो सब्द बिदेह ।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥५॥

---

* लगा हुआ । † रस्सी ।

एक सब्द सुखरास है, एक सब्द दुखरास ।
एक सब्द बंधन कटै, एक सब्द गल फाँस ॥६॥
सब्द सब्द सब कोइ कहै, सब्द के हाथ न पाँव ।
एक सब्द औषधि करै, एक सब्द करै घाव ॥७॥
सीखै सुनै बिचारि ले, ताहि सब्द सुख देय ।
बिना समझ सब्दै गहै, कछू न लाहा लेय ॥८॥
सब्द हमारा आदि का, पल पल करिये याद ।
अंत फलैगी माहिँ की, बाहर की सब बाद ॥९॥
सब्दहि मारे मरि गये, सब्दहि तजिया राज ।
जिन जिन सब्द पिछानिया, सरिया तिन का काज ॥१०॥
सब्दगुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार ।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥११॥
सब्द हमारा हम सब्द के, सब्दहि लेय परख्ख ।
जो तू चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥१२॥
सब्द हमारा हम सब्द के, सब्द ब्रह्म का कूप ।
जो चाहै दीदार को, परख सब्द का रूप ॥१३॥
एक सब्द गुरुदेव का, जा का अनँत बिचार ।
पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार ॥१४॥
सब्द बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय ।
द्वार न पावै सब्द का, फिरि फिरि भटका खाय ॥१५॥
यही बड़ाई सब्द की, जैसे चुम्बक भाय ।
बिना सब्द नहिँ ऊबरै, केता करै उपाय ॥१६॥
सही टेक है तासु की, जा के सतगुरु टेक ।
टेक निबाहै दँह भरि, रहै सब्द मिलि एक ॥१७॥

काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिँ नजरि न आइ ।
कह कबीर गुरु सब्द गहि, जम से जीव बचाइ ॥१८॥
ऐसा मारा सब्द का, मुआ न दीखै कोय ।
कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय ॥१९॥
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल ।
हीरा तो दामेँ मिलै, सब्दहिँ मोल न तोल ॥२०॥
सब्द दुराया ना दुरै, कहैं जो ढोल बजाय ।
जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय ॥२१॥
सब्द पाय सुति राखही, सो पहुँचै दरबार ।
कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार ॥२२॥
औरै दारू सब करी, पै सुभाव की नाहिँ ।
सो दारू सतगुरु करी, रहै सब्द के माहिँ ॥२३॥
सब्द उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोइ मानै संत ।
कहै कबीर बिचारि कै, ताहि मिलाऔं कंत ॥२४॥
मता हमारा मंत्र है, हम सा होय सो लेय ।
सब्द हमारा कल्प-तरु, जो चाहै सो देय ॥२५॥
रैन समानो भानु में, भानु अकासे माहिँ ।
अकास समाना सब्द में, सब्द परे कछु नाहिँ ॥२६॥
सब्द कहाँ से उठत है कहँ को जाइ समाय ।
हाथ पाँव वा के नहीँ, कैसे पकरा जाय ॥२७॥
सहस कँवल तेँ उठत है, सुन्नहिँ जाय समाय ।
हाथ पाँव वा के नहीँ, सुति तेँ पकरा जाय ॥२८॥
सब्द कहाँ तेँ आइया, कहाँ सब्द का भाव ।
कहाँ सब्द का सीस है, कहाँ सब्द का पाँव ॥२९॥

सब्द ब्रह्मंड तेँ आइया, मध्य सब्द का भाव ।
ज्ञान सब्द का सीस है, अज्ञान सब्द का पाँव ॥३०॥
सीतल सब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिँ ।
तेरा प्रीतम तुज्झ मेँ, सत्रू भी तुझ माहिँ ॥३१॥
सब्द भेद तब जानिये, रहै सब्द के माहिँ ।
सब्दे सब्द प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिँ ॥३२॥
सोई सब्द निज सार है, जो गुरु दिया बताय ।
बलिहारी वा गुरू की, सिष्य बिगोय* न जाय ॥३३॥
वह मोती मत जानियो, पुहे पोत के साथ ।
यह तौ मोती सब्द का, बेधि रहा सब गात ॥३४॥
बलिहारी वहि दूध की, जा मेँ निकसत घीव ।
आधी साखि कबीर की, चार बेद को जीव ॥३५॥
सब्द अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गरुआ मोल ।
बिना दाम को मानवा, फिरता डाँवाँडोल ॥३६॥
रैनि तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय ।
सार सब्द के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥३७॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय ।
सार सब्द जाने बिना, कागा हंस न होय ॥३८॥
सत्त सब्द निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति ।
काग कुमति तजि हंस ह्वै, चले सो भव जल जीति ॥३९॥
सब्द खोजि मन बसि करै, सहज जोग है येहि ।
सत्त सब्द निज सार है, यह तो झूठी देँहि ॥४०॥
सार सब्द जाने बिना, जिव परलै मेँ जाय ।
काया माया थिर नहीं, सब्द लेहु अरथाय ॥४१॥

---

* भरम या धोखे मेँ न पड़ जाय ।

कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान ।
जेहि सव्द तें मुक्ति है, सो न परै पहिचान ॥४२॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान ।
सार सव्द इक साँच है, और झूठ सब ज्ञान ॥४३॥
पृथ्वी अप* हूँ तेज नहिं, नहीं वायु आकास ।
अललपच्छ तहँ है रहै, सत्त सव्द परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सव्द प्रमान, अनहद बानी ऊचरै ।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सव्द बिबेकी पेखिया ।
कह्यो मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन है ।
नहिँ आवै नहिँ जाय, सुन्न सव्द थिति पावही ॥४७॥
ज्ञानी करहु विचार, सतगुरु ही सोँ पाइये ।
सत्त सव्द निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग मेँ बहु परिपंच, ता मेँ जीव भुलान सब ।
नहिँ पावै कोइ संच, सार सव्द जाने बिना ॥४९॥
गहे सव्द निज मूल, सिंधहिँ बुंद समान है ।
सूच्छम मेँ अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्योँ ॥५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय ।
सुरत समानी सव्द मेँ, ता को काल न खाय ॥५१॥

---

* जल ।

॥ बिनती का अंग ॥

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान ।
साधु सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥१॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं* रोय ।
चरनौं ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥२॥
मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात ।
आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥३॥
सुरति करौ मेरे साँइयाँ, हम हैं भवजल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥४॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं ।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥५॥
सतगुरु तोहि बिसारि के, का के सरनै जायँ ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहिं समायँ ॥६॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार ।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥७॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब-निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥८॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार ।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार ॥९॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त ।
साहेब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त ॥१०॥
साँईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं ।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥११॥

* कहूँ ।

साहेब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिँ ।
हम से तुमरे बहुत हैँ, तुम सम हमरे नाहिँ ॥१२॥
औसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेस ।
कलंक उतारौ साँइयाँ, भानौ भरम अँदेस ॥१३॥
कर जोरे बिनती करौँ, भवसागर आपार ।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार ॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार ।
जो तुम छोड़ौ हाथ तेँ, कौन उतारै पार ॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह* ।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऔँ कछु थाह ॥१६॥
साहेब तुमहिँ दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर ।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१७॥
साँईं तेरा कछु नहीँ, मेरा होय अकाज ।
बिरद† तुम्हारे नाम की, सरन परे की लाज ॥१८॥
मेरा मन जो तोहिँ सोँ, योँ जो तेरा होय ।
अहरन ताता लोह ज्योँ, संधि लखै नहिँ कोय‡ ॥१९॥
मेरा मन जो तोहिँ सोँ, तेरा मन कहिँ और ।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
मुझ मेँ औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ ।
जो मैँ बिसरौँ तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥२१॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन मेँ ढंग ।
ना जानौँ उस पीव से, क्योँकर रहसी रंग ॥२२॥

---

* अथाह । † महिमा । ‡ जब दोनोँ टुकड़े लोहे के गरम होँ तब बेमालूम जोड़ लग सकता है ।

जिन को साँईं रँगि दिया, कबहुँ न होय कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरी*, चढ़ै सवाया रंग ॥२३॥
मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुज्झ ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुज्झ ॥२४॥
औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर ।
ऐसे समरथ सतगुरु, ताहि लगावैं ठौर ॥२५॥
तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़ करि पकरो बाहिँ ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माहिँ ॥२६॥
कबीर करत है बीनती, सुनो संत चित लाय ।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिँ बताय ॥२७॥
सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार ।
भवसागरहि अथाह से, खेइ उतारैं पार ॥२८॥
भक्ति दान मोहिँ दीजिये, गुरु देवन के देव ।
और नहीं कछु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥२९॥

॥ उपदेश का अंग ॥

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥१॥
दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वाँस से†, लोह भसम ह्वै जाय ॥२॥

---

* उग्र । † भाथी या धौंकनी जो बिना जीव की होती है उसकी हवा से लोहा गल जाता है ।

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥३॥
या दुनिया में आइ के, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥४॥
खाय पकाय लुटाइ ले, है मनुवाँ मेहमान।
लेना होय सो लेइ ले, यही गोय* मैदान ॥५॥
लेना होय सो लेइ ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चली, आवा गवन बँधान ॥६॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥७॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय ॥८॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँसन दे झख मारि ॥९॥
बाजन देहू जंतरी, कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेड़ ॥१०॥
कबिरा काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि डुरिये नहीं, कूकर भुँसै हजार ॥११॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहँ कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥१२॥

॥ सोरठा ॥

गारी मोटा† ज्ञान, जो रंचक उर में जरै।
कोटि सँवारै काम, बैरी उलटि पाँयन परै ॥१३॥

---

* गेंद। † बड़ा।

गारी ही सोँ ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१४॥
हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु सोँ मिलै, जीता जम की लार ॥१५॥
जेता घट तेता मता, घट घट और सुभाव।
जा घट हार न जीत है, ता घट ज्ञान समाव ॥१६॥
जैसा अन्न जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥१७॥
माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन तेँ मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१८॥
उदर समाता माँगि लै, ता को नाहीँ दोष।
कह कबीर अधिका गहै, ता की गती न मोष ॥१९॥
उदर समाता अन्न लै, तनहिँ समाता चीर।
अधिकहिँ संग्रह ना करै, ता का नाम फ़कीर ॥२०॥
कथा कीरतन कलि बिषे, भौसागर की नाव।
कह कबीर जग तरन को, नाहीँ और उपाव ॥२१॥
कथा कीरतन छोड़ कर, करै जो और उपाय।
कह कबीर ता साध के, पास कोई मत जाय ॥२२॥
कथा कीरतन करन की, जा के निस दिन रीति।
कह कबीर वा दास सोँ, निस्चय कीजै प्रीति ॥२३॥
कथा कीरतन रात दिन, जा के उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥२४॥
कथा करो करतार की, निस दिन साँझ सकार।
काम कथा को परिहरौ, कहैँ कबीर बिचार ॥२५॥

काम कथा सुनिये नहीं, सुनकर उपजै काम।
कहैं कबीर विचार कर, बिसर जात है नाम ॥२६॥
कबीर संगी साधु का, दल आया भरपूर।
इन्द्रियों को तब बाँधिया, या तन कीया धूर ॥२७॥
कहते को कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को, फिर जवाब मत देइ ॥२८॥
जो कोइ समझै सैन में, ता सोँ कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं, ता सोँ कछु नहिँ कहन ॥२९॥
बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावै ठौर।
समझाया समझै नहीं, दे दुइ धक्के और ॥३०॥
बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐँचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥३१॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तौ पावै दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार ॥३२॥
बनजारे का बैल ज्यों, टाँडा उतरा आय।
एकन के दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥३३॥
मन राजा नायक भया, टाँडा लादा जाय।
हैहै हैहै है रही, पूँजी गई बिलाय ॥३४॥
जीवत कोइ समुझै नहीं, मुआ न कहै सँदेस।
तन मन से परिचय नहीं, ता को क्या उपदेस ॥३५॥
जेहिँ जेवरी तेँ जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्यों, सोन समान सरीर ॥३६॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिन को तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आब* ॥३७॥

* पानी।

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करौगे कब्ब ॥३८॥
जिभ्या को दे बंधने, बहु बोलना निवार ।
सो पारख से संग करु, गुरुमुख सब्द बिचार ॥३९॥
जा की जिभ्या बंद नहिं, हिरदे नाहीं साँच ।
ता के संग ना लागिये, घालै बटिया काँच* ॥४०॥
सकल दुरमती दूर करि, आछो जन्म बनाव ।
काग गमन गति छाँड़ि दे, हंस गमन गति आव ॥४१॥
कर बंदगी बिवेक की, भेष धरे सब कोय ।
वह बंदगी बहि जान दे, जहँ सब्द बिवेक न होय ॥४२॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार ।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥४३॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥४४॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥४५॥
जिन ढूँढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥४६॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप कर दीजै ताल† ।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥४७॥
साध संत तेई जना, जिन माना बचन हमार ।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४८॥
पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि ।
जो जन तिरषावंत है, पीवैगा झख मारि ॥४९॥

* कच्चे रास्ते में यानी कुराह में गिरा देगा । † ताला ।

जो तू चाहै मुज्झ को, छाँड़ि सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ॥५०॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिँ सब्द समाय ।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥५१॥
अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय ।
चतुराई नहिँ छूटसी, सुरत सब्द में पोय ॥५२॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल ।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥५३॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट ।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥५४॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥५५॥
कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सब्द पहिचान ॥५६॥
अपने उरझे उरझिया, दीखे सब संसार ।
अपने सुरझे सुरझिया, यह गुरु ज्ञान बिचार ॥५७॥
करता था तो क्योँ रहा, अब करि क्योँ पछिताय ।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ तेँ खाय ॥५८॥

॥ सामर्थ का अंग ॥

साहेब सोँ सब होत है, बंदे तेँ कछु नाहिँ ।
राई तेँ पर्बत करे, पर्बत राई नाइँ* ॥१॥
बहन बहंता थल करै, थल कर बहन बहोय ।
साहेब हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय ॥२॥

* तुल्य ।

साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर ।
औगुन छाँड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥३॥
ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर ।
जो कछु किया साहिब किया, ता तेँ भया कबीर ॥४॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं ।
कहो कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं ॥५॥
कीया कछू न होत है, अनकीया ही होय ।
कीया जो कछु होय तो, करता औरै कोय ॥६॥
जिस नहिं कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब होय ।
दरगह तेरी साँइयाँ, मेटि न सक्कै कोय ॥७॥
इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाहि ।
दुहूँ दिसा फनि* फन कढ़े, समरथ पार लगाहि ॥८॥
घट समुद्र लखि ना परै, उट्ठै लहरि अपार ।
दिल दरिया समरथ विना, कौन उतारै पार ॥९॥
जा को राखै साँइयाँ, मारि न सक्कै कोय ।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥१०॥
अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय ।
अबरन बरन तेँ बाहिरा, करि करि थका उपाय ॥११॥
मो मेँ इतनी सक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार ।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥१२॥
साँईं तुझ से बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय ।
जा के सिर पर तू धनी, लाखोँ मोल कराय ॥१३॥
साँईं मेरा बानिया, सहज करै ब्योपार ।
बिन डाँड़ी बिन पालरे, तौलै सब संसार ॥१४॥

---

* साँप

धन धन साहेब तू बड़ा, तेरी अनुपम रीत ।
सकल भूप सिर साँइयाँ, है कर रहा अतीत ॥१५॥
बालक रूपी साँइयाँ, खेलै सब घट माहिँ ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिँ ॥१६॥

॥ निज करता के निर्णय का अंग ॥

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वा की डार ।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥१॥
नाद बिंदु तेँ अगम अगोचर, पाँच तत्त तेँ न्यार ।
तीन गुनन तेँ भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार ॥२॥
तीन गुनन की भक्ति मेँ, भूलि पर्खो संसार ।
कहै कबीर निज नाम बिन, कैसे उतरै पार ॥३॥
हरा होय सूखै सही, योँ तिरगुन बिस्तार ।
प्रथमहिँ ता को सुमिरिये, जा का सकल पसार ॥४॥
सब्द सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान ।
लखनेहारा लखि लिया, जा को है गुरु ज्ञान ॥५॥
हम तो लखा तिहुँ लोक मेँ, तुम क्योँ कहो अलेख ।
सार सब्द जाना नहीँ, धोखे पहिरा भेख ॥६॥
राम कृष्न अवतार हैँ, इन को नाहीँ माँड ।
जिन साहेब स्रिष्टी किया, सो किनहुँ न जाया राँड ॥७॥
संपुट माहिँ समाइया, सो साहेब नहिँ होय ।
सकल माँड मेँ रमि रहा, मेरा साहेब सोय ॥८॥
साहेब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय ।
दूजा साहेब जो कहूँ, साहेब खरा रिसाय ॥९॥

जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप ।
पुहुप बास तेँ पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप ॥१०॥
देँही माहिँ बिदेह है, साहेब सुरति सरूप ।
अनँत लोक मेँ रमि रहा, जा के रंग न रूप ॥११॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार ।
पाँच तत्त्व के भीतरे, जा का यह संसार ॥१२॥
चार भुजा के भजन मेँ, भूलि परे सब संत ।
कबिरा सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत ॥१३॥
निबल सबल जो जानि कै, नाम धरा जगदीस ।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिँ सीस ॥१४॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहेब सोय ।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥१५॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार ।
ताहि अगस्त अचै* गयो, इन मेँ को करतार ॥१६॥
गिरवर धार्यो कृष्न जी, द्रोनागिर हनुमंत ।
सेसनाग सब सृष्टि सहारी, इन मेँ को भगवंत ॥१७॥
राम कृष्न को जिन किया, सो तो करता न्यार ।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार ॥१८॥

॥ घट मठ (सर्ब घट व्यापी) का अंग ॥

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिँ ।
ऐसे घट मेँ पीव है, दुनियाँ जानै नाहिँ ॥१॥
तेरा साँई तुज्झ मेँ, ज्यौं पुहुपन मेँ बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यौं, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥२॥

* कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था ।

जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घटही माहिँ।
परदा दीया भरम का, ता तेँ सूझै नाहिँ ॥३॥
समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय।
तेरा साहेब तुज्झ में, अंत कहूँ मत जाय ॥४॥
सब घट मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥५॥
जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख।
सब घट व्यापक ह्वै रहा, सोई आप अलेख ॥६॥
भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँधि गइ बेल।
तेरा साँईं तुज्झ में, ज्यौं तिल माहीं तेल ॥७॥
ज्यौं तिल माहीं तेल है, ज्यौं चकमक में आगि।
तेरा साँईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥८॥
ज्योँ नैनन में पूतरी, यौं खालिक घट माहिँ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिँ ॥९॥
पुहुप मध्य ज्यौं बास है, व्यापि रहा सब माहिँ।
संतौं माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिँ ॥१०॥
पावक रूपी साँइयाँ, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ता तेँ बुझि बुझि जाय ॥११॥

॥ समदृष्टी का अंग ॥

समदृष्टी सतगुरु किया, भर्म किया सब दूरि।
भया उँजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर ॥१॥
समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अबिचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एकही, दूजा नाहीं आन ॥२॥

समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहँ देखौं तहँ ऐकही, साहेब का दीदार ॥३॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥४॥

॥ भेदी का अंग ॥

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै सब्द की, निर्भय आवै जाय ॥१॥
भेदी जानै सबै गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान ॥२॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आत्मा, धोया निर्गुन चीर ॥३॥
भेद ज्ञान तौ लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ बिकल्प नहिं कोय ॥४॥

॥ परिचय का अंग ॥

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय ॥१॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी होगइ लाल ॥२॥
जिन पावन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥३॥
उलटि समाना आप मैं, प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥४॥

जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान ।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥५॥
हम बासी वा देस के, जहँ सत्त पुरुष की आन ।
दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥६॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास ।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास ॥७॥
संसय करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार ।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥८॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस ।
बिना देंह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥९॥
नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन ।
सुरत सब्द मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१०॥
हिल मिल खेलैं सब्द से, अंतर रही न रेख ।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥११॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन ।
निज मन धसा स्वरूप में, सतगुरु दीन्ही सैन ॥१२॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोग अनंत ।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुनि लागी सुन्न में, निस दिन रहै गलतान ।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥१५॥
उनमुनि चढ़ी अकास को, गई धरनि से छूटि ।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूटि ॥१६॥

उनमुनि सोँ मन लागिया, गगनहिँ पहुँचा जाय ।
चाँद बिहूना चाँदना, अलख निरंजनराय ॥१७॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा नहीँ, एक तुम्हारी आस ॥१८॥
सुरति समानी निरति मेँ, अजपा माहीँ जाप ।
लेख समाना अलेख मेँ, आपा माहीँ आप ॥१९॥
सुरति समानी निरति मेँ, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार ॥२०॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
निस बासर सुख-निधि लहैाँ, अन्तर प्रगटे आप ॥२१॥
कौतुक देखा देँह बिन, रबि ससि बिना उजास ।
साहेब सेवा माहिँ है, बेपरवाही दास ॥२२॥
पवन नहीँ पानी नहीँ, नहीँ धरनि आकास ।
तहाँ कबीरा संत जन, साहेब पास खवास ॥२३॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक ।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥२४॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान ।
कहिबे की सोभा नहीँ, देखे ही परमान ॥२५॥
सुरज समाना चाँद मेँ, दोऊ किया घर एक ।
मन का चेता तब भया, पूर्ब जनम का लेख ॥२६॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास ।
सुख करि सूती महल मेँ, बानी फूटी बास ॥२७॥
आया था संसार मेँ, देखन को बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप ॥२८॥

पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद ॥२९॥
कबीर देखा एक अँग, महिमा कही न जाय ।
तेज पुंज परसा धनी, नैनौं रहा समाय ॥३०॥
नँव बिहूना देहरा, देँह बिहूना देव ।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥३२॥
आकासै औंधा कुआँ, पातालै पनिहार ।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥३३॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥३४॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि ।
सब्द अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि ॥३५॥
दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं देव ।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥३६॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥३७॥
मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥३८॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ॥३९॥
पूरे सोँ परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि ।
जम सोँ बाकी कटि गई, साँईं मिला हजूर ॥४०॥

सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय।
सुख पाया साहेब मिला, आनँद उर न समाय ॥४१॥
जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ रहा कबीर समाय ॥४२॥
कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन ॥४३॥
अगम अगोचर गम नहीं, तहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिं छोत ॥४४॥
कबीर मन मधुकर भया, कीया नर तरु बास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास ॥४५॥
सीप नहीं सायर नहीं, स्वाँति बुंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजे, सुन्न सिखर घट माहिं ॥४६॥
घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट।
कहँ कबीर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट ॥४७॥
जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीं, दरसन पावै दास ॥४८॥
कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दोसत* किया अलेख ॥४९॥
पानी हीं तें हिम भया, हिम हीं गया बिलाय।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय ॥५०॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साँईं तें सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय ॥५१॥
पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोंच बिन, भूल गया यह देस ॥५२॥

---

* मित्र।

सुचि* पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, साहेब मिला हजूर ॥५३॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहुँ न लाग।
ज्वाला तेँ फिरि जल भया, बूझी जलन्ती आग ॥५४॥
तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया अस्नान ॥५५॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल पाया समरत्थ।
सायर माहिँ ढँढोलता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५६॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो पाया ठौर।
सोही फिर आपन भया, जा को कहता और ॥५७॥
कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनौं रहा समाय ॥५८॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा बन्दगी, करि कोई निज दास ॥५९॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीँ हाट नहिँ बाट।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥६०॥
नहीँ हाट नहिँ बाट था, नहिँ धरती नहिँ तीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर ॥६१॥
पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त† न गोरख राम ॥६२॥
सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीँ, तहँ घर किया कबीर ॥६३॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥६४॥

* पवित्रता। † दत्तात्रे।

हम बासी उस देस के, (जहँ) जाति बरन कुल नाहिँ ।
सब्द मिलावा है रहा, देँह मिलावा नाहिँ ॥६५॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिँ ।
पाला गलि पानी मिला, यौं हरिजन हरि माहिँ ॥६६॥
कबीर कमल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहँ होय ।
मन भँवरा जहँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥६७॥
सून्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ बिरला जाने भेव ॥६८॥
मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिँ ।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिँ ॥६९॥
गुन इंद्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥७०॥

मौन का अंग

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो झोठ* ।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥१॥
दीठा है तो कस कहूँ, कहूँ तो को पतियाय ।
साँईं जस तैसा रहो, हरखि हरखि गुन गाय ॥२॥
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
बेद कुराना ना लिखी, कहूँ तो को पतियाय ॥३॥
जो देखै सो कहै नहिँ, कहै सो देखै नाहिँ ।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग सरवन काहि ॥४॥
जो पकरै सो चलै नहिँ, चलै सो पकरै नाहिँ ।
कहै कबीर या साखि को, अरथ समझ मन माहिँ ॥५॥

---

* झूठ ।

गगन दुवारे मन गया, करै अमी रस पान।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ॥६॥
जानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय।
कहै कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिँ कोय ॥७॥
वाद बिवादे बिष घना, बोले बहुत उपाध।
मौनि गहे सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥८॥

॥ सजीवन का अंग ॥

जरा मीच व्यापै नहीँ, मुआ न सुनिये कोय।
चलो कबीर वा देस को, जहँ बैद साँइयाँ होय ॥१॥
भवसागर तेँ योँ रहो, ज्योँ जल कँवल निराल।
मनुवा व्हाँ ले राखिये, जहाँ नहीँ जम काल ॥२॥
कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
ना जानौँ केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल ॥३॥
कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह सोँ तोरि।
गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥४॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनौँ से चिपटिया, का करै काल का बान ॥५॥

॥ मृतक का अंग ॥

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास ॥१॥
कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय ॥२॥

मैं मरजीवा* समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक ॥३॥
डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास ॥४॥
हरि हीरा क्योंँ पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया सौँ काढ़सी, कोइ मरजीवा दास ॥५॥
सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अंतर नाम रतन ॥६॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल ॥७॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिँ।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिँ ॥८॥
गुरु दरिया सूभर† भरा, जा में मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल ॥९॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय ॥१०॥
ऊँचा तरवर‡ गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय ॥११॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय ॥१२॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैँ, कहैँ कबीर कबीर ॥१३॥

---

* समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला। † प्रकाशमान।
‡ पेड़।

मन को मिरतक देखि के, मत माने बिस्वास ।
साध जहाँ लों भय करैं, जब लग पिंजर स्वाँस ॥१४॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत ।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥१६॥
वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार ।
एक कबीरा ना मुआ, जा के नाम अधार ॥१७॥
जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय ।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर अरु अम्मर होय१८
मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट ।
गगन मँडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१९॥
मोहिं मरने का चाव है, मरौं तो गुरू दुवार ।
सत गुरु बूझै बात री, कोइ दास मुआ दरबार ॥२०॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥२१॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
रोइये साकित बापुरे, जो हाटो हाट बिकाय ॥२२॥
मरना भला बिदेस का, जहँ अपना नहिं कोय ।
जीव जंतु भोजन करैं, सहज महोच्छव होय ॥२३॥
कबिरा मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार ।
हरि आगे आदर लिया, ज्यों गऊ बछा की लार ॥२४॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार ।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥२५॥

जिन पाँवन भूँ बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥२६॥
पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय ॥२७॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय ॥२८॥
घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥२९॥
कबीर चेरा संत का, दासनहू का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यौं पाँव तले की घास ॥३०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृष्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम ॥३१॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यौं पैंड़े की खेह ॥३२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥३३॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥३४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय॥३५॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल तें रहित है, ते साधू कोइ और ॥३६॥

॥ साध का अंग ॥

साध बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरसैं आय ।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥१॥
सद कृपाल दुख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय ।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय ॥२॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं व्याप ।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप ॥३॥
सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार ।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त बिचार ॥४॥
सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात ।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥५॥
निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह ।
बिषया सोँ न्यारा रहै, साधन कर मति येह ॥६॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥७॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥८॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥९॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू सोँ हेत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥१०॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान ।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥११॥

ऐसा साधू खोजि कै, रहिये चरनौं लाग।
मिटै जनम की कल्पना, जाके पूरन भाग ॥१२॥
सिंहौं के लेहँड़े नहीं, हंसौं की नहिं पाँत।
लालौं की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात* ॥१३॥
सब बन तो चंदन नहीं, सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहिं ॥१४॥
स्वाँगी सब संसार है, साधू समझ अपार।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१५॥
सिंह साध का एक मत, जीवत ही को खाय।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१६॥
रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड।
साध बचन पलटै नहीं, जो पलट जाय ब्रह्मंड ॥१७॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगै तो गिर पड़ै, निःचल उतरै पार ॥१८॥
साध कहावन कठिन है, ज्यौं लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं।
डिंभ चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि ॥२०॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सोँ नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥२१॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कह कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥२२॥
छाजन भोजन प्रीत सोँ, दीजे साध बुलाय।
जीवत जस है जक्त में, अंत परम पद पाय ॥२३॥

---

* गरोह, भीड़ भाड़

साध हमारी आतमा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे योँ रहौं, ज्योँ पय मद्धे घीव ॥२४॥
ज्योँ पय मद्धे घीव है, त्याँ रमिया सब ठौर।
बक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़े ते और ॥२५॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ पछालौं* अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥२६॥
वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥२७॥
साधू आवत देखिकर, हँसी हमारी देँह।
माथे का ग्रह ऊतरा, नैनाँ बँधा सनेह ॥२८॥
साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सब्द बिवेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥२९॥
साधु साधु सब एक हैं, जैसे पोस्त का खेत।
कोई बिवेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥३०॥
निराकार की आरसी, साधाँहीं की देँह।
लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं मेँ लखि लेह ॥३१॥
कोई आवै भाव ले, कोई आवै अभाव।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैँ अभाव ॥३२॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजै कानि।
(ज्याँ) उद्यम से लछमी मिलै, आलस मेँ नित हानि ॥३३॥
कबीर दरसन साध का, साहेब आवैँ याद।
लेखे मेँ सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥३४॥
खाली साध न भेँटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहैँ कबीरा भेँट धर, जो तेरे घर होय ॥३५॥

---
* धोओ।

मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।
गगन मँडल खाली पड़ा, साहेब संतों पास ॥३६॥
नहिँ सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिँ सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥३७॥
रक्त छाँड़ि पय को गहै, ज्यौं रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाँड़ै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥३८॥
साधू आवत देखि कै, मन में करै मरोर।
सो तो होसी चूहरा*, बसै गाँव की छोर ॥३९॥
साधन के मैं संग हौं, अनत कहूँ नहिँ जावँ।
जो मोहिँ अरपै प्रीति सों, साधन मुख होय खावँ ॥४०॥
साध मिले साहेब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा बाचा कर्मना, साधू साहेब एक ॥४१॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कहैं कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध ॥४२॥
जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४३॥
साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जम चोट।
सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन की पोट ॥४४॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहैं कबीरा भेंट धरू, अपने बित अनुमान ॥४५॥
दरसन कीजै साध का, दिन में कइ इक बार।
आसोजा† का मेँह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥४६॥
कई बार नहिँ करि सकै, तो दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस तेँ, काल दगा नहिँ देय ॥४७॥

* भंगी। † भादों।

दोय वखत नहिँ करि सकै, तो दिन में करु इक बार ।
कबीर साधू दरस तें, उतरै भौजल पार ॥४८॥
एक दिना नहिँ करि सकै, तो दूजे दिन करि लेह ।
कबीर साधू दरस तें, पावै उत्तम देह ॥४९॥
दूजे दिन नहिँ करि सकै, तीजे दिन करि जाय ।
कबीर साधू दरस तें, मोच्छ मुक्ति फल पाय ॥५०॥
तीजे चौथे नहिँ करै, तो बार बार* करि जाय ।
या में बिलँब न कीजिये, कह कबीर समझाय ॥५१॥
बार बार नहिँ करि सकै, तो पाख पाख† करि लेय ।
कहैं कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय ॥५२॥
पाख पाख नहिँ करि सकै, तो मास मास करि जाय ।
या में देर न लाइये, कह कबीर समझाय ॥५३॥
मास मास नहिँ करि सकै, तो छठे मास अलबत्त ।
या में ढील न कीजिये, कह कबीर अविगत्त ॥५४॥
छठे मास नहिँ करि सकै, बरस दिना करि लेय ।
कह कबीर सो भक्त जन, जमहिँ चितौती देय‡ ॥५५॥
बरस बरस नहिँ करि सकै, ता को लागै दोष ।
कहै कबीरा जीव सो, कबहुँ न पावै मोष ॥५६॥
संत न छोड़ैं संतई, कोटिक मिलै असंत ।
मलया भुवँगहि बेधिया, सीतलता न तजंत ॥५७॥
साधू जन सब में रमैं, दुक्ख न काहू देहिँ ।
अपने मति गाढ़े रहैं, साधुन का मति एहि ॥५८॥
साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिँ ।
पान फूल छेड़ै नहीं, बसै बगीचा माहिँ ॥५९॥

---

* सातवें दिन, हफ़्तेवार । † पंद्रहवें दिन । ‡ जम को धिरावै ।

साधू भँवरा जग कली, निस दिन रहै उदास ।
पल इक तहाँ बिलम्बही, सीतल सब्द निवास ॥६०॥
साधु हजारी कापड़ा, ता में मल न समाय ।
साकट काली कामरी, भावै तहाँ बिछाय ॥६१॥
साकट बाम्हन मत मिलौ, साध मिलौ चंडाल ।
जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥६२॥
कमल पत्र हैं साधु जन, बसैं जगत के माहिं ।
बालक केरी धाय ज्यौं, अपना जानत नाहिं ॥६३॥
साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल ।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥६४॥
साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥६५॥
हरि दरिया सूभर भरा, साधौं का घट सीप ।
ता में मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप ॥६६॥
साधू ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान बिबेक ।
बाहर मिलते से मिलै, अंतर सब से एक ॥६७॥
अगम पंथ को मन गया, सुरति भई अगुवानि ।
तहाँ कबीरा मँडि रहा, बेहद के मैदान ॥६८॥
बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय ।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥६९॥
बँधा भी पानी निर्मला, जो टुक गहिरा होय ।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥७०॥
कौन साधु का खेल है, कौन सुरति का दाव ।
कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव ॥७१॥

छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरति का दाव ।
सतगुरु अमृत कूप हैं, सब्द बज्र का घाव ॥७२॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिँ ।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिँ ॥७३॥
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय ।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय ॥७४॥
भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज ।
बेपरवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज ॥७५॥
साधु समुंदर जानिये, माहीँ रतन भराय ।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़ि जाय ॥७६॥
परमेसुर तेँ संत बड़, ता का कहा उनमान ।
हरि माया आगे धरे, संत रहैँ निर्बान ॥७७॥
संत मिला जनि बीछरो, बिछरौ यह मम प्रान ।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मति आन ॥७८॥
कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास ।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥७९॥
चंदन की कुटकी* भली, नहिँ बबूल लखराँव ।
साधन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥८०॥
हैवर गैवर† सुघर घर, छत्रपती की नारि ।
तासु पटतरे ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥८१॥
साधन की कुतिया भली, बुरी सकट की माय ।
वह बैठी हरि जस सुनै, वह निंदा करने जाय ॥८२॥
हरि दरबारी साध हैँ, इन सम और न होय ।
बेगि मिलावैँ नाम से, इन्हैँ मिलै जो कोय ॥८३॥

* टुकड़ा । † अनगिनत घोड़े हाथी ।

साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद ।
कोटि बिघन पल में टरै, मिटै सकल दुख द्वंद ॥८४॥
धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया साधू पूत ।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत* ॥८५॥
बेद थके ब्रह्मा थके, थके जो सेस महेस ।
गीताहू की गम नहीं, तहँ संत किया परवेस ॥८६॥
तीरथ गये एक फल, साध मिले फल चारि† ।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर बिचारि ॥८७॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत‡ मोती माहिँ§ ।
बस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल में नाहिँ ॥८८॥
साधू खोजा‖ राम के, धँसैं जो महलन माहिँ ।
औरन को परदा लगै, इनको परदा नाहिँ ॥८९॥
हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिँ ।
कह कबीर जग हरि बिखे¶, सो हरि हरिजन माहिँ ॥९०॥
साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहेब हरि नहिँ दोय ॥९१॥
साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय ।
ना जानूँ यहि भेख में, हरि ही जो मिलि जाय ॥९२॥
कबीर दर्सन साध के, बड़ भागे दर्साय ।
जो होवे सूली सजा**, काँटेई टरि जाय ॥९३॥
साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सब्द बिचार ।
जग में होते साध नहिँ, जरि मरता संसार ॥९४॥

---

*वृथा । † अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष । ‡ पैदा होता है । § अंतर में । ‖ हिजड़े जो बादशाही महल में काम करते थे और बड़ी कदर से रक्खे जाते थे । ¶ में । ** दंड ।

साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिँ ।
सो घर मरघट सारिखा*, भूत बसै ता माहिँ ॥९५॥
निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव ।
जो चाहै आकार तू, साधू परतछ देव ॥९६॥
जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं विलाप ।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप ॥९७॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम ।
जब लग संत न सेवई, तब लग सरै न काम ॥९८॥
आसा वासा संत का, ब्रह्मा लखै न वेद ।
षट दर्सन† खट पट करै, बिरला पावै भेद ॥९९॥

॥ भेष का अंग ॥

तत्व तिलक तिहुँ लोक में, सत्त नाम निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अमित अपार ॥१॥
तत्व तिलक की खानि है, महिमा है निज नाम ।
अछै नाम वा तिलक को, रहै अछय बिस्राम ॥२॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्बान ॥३॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत ।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥४॥
तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय ।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥५॥

---

*सरीखा, मिस्ल । †छवो शास्त्र ।

हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥६॥
भर्म न भागै जीव का, बहुतक धरिया भेख।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहिगा लेख ॥७॥

॥ बेहद का अंग ॥

बेहद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव।
जे नर राते हद्द सौं, कधी न पावैं पीव ॥१॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ता सौं पीव हजूर ॥२॥
हद्द बँधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुवाँ तहँ ले राखिया, जहँ बाजै अनहद तूर ॥३॥
हद्द छाँड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम ॥४॥
हद्द छाँड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥५॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं ॥६॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोऊ तजै, तिन का मता अगाध ॥७॥
हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥८॥
जहाँ सोक ब्यापै नहीं, चल हंसा वा देस।
कह कबीर गुरुगम गहौ, छाँड़ि सकल भ्रम भेस ॥९॥

॥ असाधु का अंग ॥

कबीर भेष अतीत का, करै अधिक अपराध ।
बाहर दीखे साध गति, माहीं बड़ा असाध ॥१॥
जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान ।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंड़े* देसी आन ॥२॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यों माँड़े ध्यान ।
धूरे† बैठि चपेटही, यों ले बूड़ै ज्ञान ॥३॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस ।
ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फंस ॥४॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार ।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥५॥
माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी‡ के साथ ॥६॥
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, हूआ घोटम घोट ।
मन को क्यों नहिं मूड़िये, जा में भरिया खोट ॥७॥
मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय ।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय ॥८॥
केसन§ कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूड़िये, जा में बिषै बिकार ॥९॥
मन मेवासी मूँड़िये, केसहिं मूँड़े काहिं ।
जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिं ॥१०॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग ।
बिपति पड़े पर छाँड़सी, ज्यों कैंचुरी भुजंग ॥११॥

---

* गहिरे । † एक तरह की मोटी घास । ‡ दुनियाँ । § बाल ।

ज्ञान सँपूरन न बिधा, हिरदा नाहिँ छिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥१२॥
बाँबी कूटैँ बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥१३॥
आप साधु कर देखिये, देखु असाधु न कोय।
जा के हिरदे गुरु नहीं, हानि उसी की होय ॥१४॥
खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
बाँझ झुलावै पालना, ता मेँ कौन सवाद ॥१५॥
जो बिभूति साधुन तजी, तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बवन करि डारिया, स्वान स्वाद करि खाय* ॥१६॥
स्वाँग पहिरि सोहदा भया, दुनियाँ खाई खूँदि।
जा सेरी† साधू गया, सो तो राखी मूँदि ॥१७॥
भूला भसम लगाइ के, मिटी न मन की चाहि।
जौ सिक्का नहिँ साँच का, तौ लगि जोगी नाहिँ ॥१८॥
बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल‡ ॥१९॥
कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेख।
करम भरम सब दूर करि, सबही माहिँ अलेख ॥२०॥
पहिले बूड़ी पिरथवी, झूठे कुल की लार।
अलख बिसार्यौ भेष मेँ, बूड़े काली धार ॥२१॥
चतुराई हरि ना मिलै, ये बातौँ की बात।
निस्प्रेही निरधार§ का, गाहक दीनानाथ ॥२२॥

---

* जिस माया को सच्चे साधु ने त्याग किया उसमेँ असाधु लिपटता है जैसे कुत्ता क़ै की हुई चीज़ को मज़े के साथ खाता है। † रास्ता। ‡ फाड़। § संसार की ओर से बेपरवाह और निरास।

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन काँचे राचे वृथा, साँचे राचे नाम ॥२३॥
साकट का मुख विम्ब* है, निकसत वचन भुवंग ।
ता की औषधि मौन है, विष नहिँ व्यापै अंग ॥२४॥
साकट कहा न कहि चलै, स्वान कहा नहिँ खाय ।
जो कौआ मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नसाय ॥२५॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।
तत्व सरीरा झरि परै, पाप रहै लपटाय ॥२६॥
हम जाना तुम मगन हौ, रहे प्रेम रस पागि ।
रंचक पवन के लागते, उठे नाग से जागि ॥२७॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिँ ।
कबीर स्वारथ ले गया, लख चौरासी माहिँ ॥२८॥
सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप ।
ये तीनौँ सोवत भले, साकट सिंह रु साँप ॥२९॥
आँखौँ देखा घी भला, मुख मेला नहिँ तेल ।
साधू से झगड़ा भला, ना साकट से मेल ॥३०॥
घर मेँ साकट इस्तरी, आप कहावै दास ।
वो तो ह्वैगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥३१॥
साकट नारी छाँड़िये, गनिका कीजै नारि ।
दासी ह्वै हरिजनन की, कुल नहिँ आवै गारि ॥३२॥

---

* बाँबी।

॥ गृहस्थ की रहनी का अंग ॥

जो मानुष गृह-धर्म युत, राखै सील बिचार ।
गुरुमुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार ॥१॥
सेवक भाव सदा रहै, बहम* न आनै चित्त ।
निरनै लखै जथार्थ बिधि, साधुन को करै मित्त ॥२॥
सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार ।
गुरु साधू का आस्त्रित, दीन बचन उच्चार ॥३॥
बहु संग्रह बिषयान को, चित्त न आवै ताहि ।
मधुकर इव† सब जगत जिव, घटि बढ़ि लखि बरताहि ॥४॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम ।
या में धोखा कछु नहीं, सरै दोऊ को काम ॥५॥

॥ बैरागी की रहनी का अंग ॥

सिख‡ साखा संसार गति, सेवक परतछ काल ।
बैरागी छावै मढ़ी, ता को मूल न डाल ॥१॥
पास न जा के कापड़ा, कधी सुरंग न होय ।
कबीर त्यागै ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥२॥
घर में रहु तौ भक्ति करु, नातर करु बैराग ।
बैरागी बंधन करै, ता का बड़ा अभाग ॥३॥
धारन तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग ।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥४॥
बैरागी बिरकत§ भला, ग्रेही चित्त उदार ।
दोउ बातौं खाली पड़ै, ता को वार न पार ॥५॥

---

* भ्रम । † सदृश । ‡ शिष्य । § विरक्त ।

॥ अष्ट दोष वा विकारी अंग ॥

१–काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम ॥१॥
सहकामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥२॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥३॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥४॥
भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥५॥
कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद।
नींद न माँगै साथरा*, भूख न माँगै स्वाद ॥६॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनह सब बकिसहौं, कामी डार न मूल ॥७॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥८॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनौं कबहूँ ना मिलैं, रबि रजनी इक ठाम ॥९॥
नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि।
बिष फल फले अनेक हैं, मत कोइ देखो चाखि ॥१०॥

* बिछौना।

जिन खाया सोई मुआ, गन गँधर्व बड़ भूप।
सतगुरु कहैं कबीर सोँ, जग में जुगति अनूप ॥११॥
कामी तो निर्भय भया, करै न काहू संक।
इंद्री केरे बस परा, भुगते नरक निसंक ॥१२॥
कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुँ न जाय।
साहेब सूँ अलगा रहै, वा के हिरदे लाय* ॥१३॥
कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि।
कुबुधि न भाजै जीव की, भावै ज्यौं परमोधि ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, समझै नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥
कामी कर्म की कैंचली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोरै सूझै नहीं, कोइ पूरबला भाग ॥१६॥
काम कहर असवार है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय ॥१७॥
केता बहता बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद विचारि कै, तू मति गोता खाय ॥१८॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट में खान।
कहा मूर्ख कहा पंडिता, दोनौं एक समान ॥१९॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावैं सोय ॥२०॥

२—क्रोध का अंग

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आग।
भीतर रहै सो जल मुए, साधू उबरे भाग ॥१॥

---

* आग।

क्रोध अगिन घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार ।
दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥२॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार ।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥३॥
जक्त माहिं धोखा घना, अहं क्रोध औ काल ।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥४॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि ।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि ॥५॥
गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूआँ होय ।
इन तीनौं को परिहरै, साध कहावै सोय ॥६॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल वचन का तीर ।
भरि भरि मारै कान मैं, सालै सकल सरीर ॥७॥
कुटिल वचन सब से बुरा, जारि करै तन छार ।
साध वचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥८॥
निन्दक तें कूकर भला, हठ करि मानै रारि* ।
कूकर तें क्रोधी बुरा, गुरुहिं दिवावै गारि† ॥९॥

३—लोभ का अंग

जब मन लागै लोभ सों, गया बिषय मैं भोय ।
कहैं कबीर बिचारि कै, कस भक्ती घन होय ॥१॥
कबीर त्रिस्ना पापिनी, ता सों प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि ॥२॥
त्रिस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय ।
जवासा का रूख ज्यौं, घन मैंहा कुम्हिलाय ॥३॥

---

* झगड़ा । † गाली ।

कबीर औंधी खोपरी, कबहूँ धापै नाहिं।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिं ॥४॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनौं जबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥५॥
सूम थैली अरु स्वानि भग, दोनौं एक समान।
घालत में सुख ऊपजै, काढ़त निकसै प्रान ॥६॥
जग में भक्त कहावई, चुकट* चून नहिं देय।
सिष जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेय ॥७॥
बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचय सूम धन, अंत चोर लै जाय ॥८॥
पूत पियारे पिता के, सँग रे लागा धाय।
लोभ मिठाई हाथ ले, आपन गया भुलाय ॥९॥

४-मोह का अंग

मोह फंद सब फाँदिया, कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखो, बिरला तत्व बिचार ॥१॥
प्रथम फँदे सब देवता, (सुख) बिलसैं स्वर्ग निवास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्युलोक की आस ॥२॥
दूजे ऋषि मुनिवर फंदे, ता सौं रुचि उपजाय।
स्वर्गलोक सुख मानहीं, (फिरि) धरनि परत हैं आय ॥३॥
मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि।
काहू सुरति जो ना करी, फिरि फिरि ले अवतारि ॥४॥
कुरुच्छेत्र सब मेदनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान ॥५॥

---

* चुटकी।

काहू जुगति न जानिया, केहि विधि बचै सुखेत।
नहिं बँदगी नहिं दीनताः नहिं साधू सँग हेत ॥६॥
जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार।
निर्मोह ज्ञान विचारि कै, कोइ साधू उतरै पार ॥७॥
जहँ लग सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥८॥
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि लौं, तुम सोँ रहै निनार*।
मिरगहिं बाँधि बिडारहू, कहै कबीर विचार ॥९॥
सालल मोह की धार मेँ, बहि गये गहिर गँभीर।
सुच्छम मछरी सुरति है, चढ़िहै उलटे नीर ॥१०॥

५-मान और हँगता का अंग

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥१॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥२॥
काला मुख कर मान का, आदर लावौ आगि।
मान बड़ाई छाँड़िं के, रहौ नाम लौ लागि ॥३॥
मान बड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार।
दीन लकुटिया बाहरा, सब जग खाया फाड़ ॥४॥
मान बड़ाई कूकरी, संतन खेदी जानि।
पांडव जग पूरन भया, सुपच बिराजे आनि ॥५॥
मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचान।
मीत किये मुख चाटही, बैर किये तन हानि ॥६॥

---

*न्यारा।

मान बड़ाई ऊरमी, यह जग का ब्योहार ।
दीन गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥७॥
बड़ी बड़ाई ऊँट की, लादे जहँ लगि साँस ।
मुहकम सलीता* लादि के, ऊपर चढ़ै फरास ॥८॥
हरिजन को ऊँचा नवै†, ऊँट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊँचा ताकै सोय ॥९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१०॥
कबीर अपने जीव तें, ये दो बातें धोय ।
मान बड़ाई कारने, आछत मूल न खोय ॥११॥
भक्त भगवंत एक है, बूझत नहीं अजान ।
सीस नवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥१२॥
प्रभुता को सब कोउ भजै, प्रभु को भजै न कोय ।
कह कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥१३॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग ।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥१४॥
अहं अग्नि हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान ।
तिन को जम न्यौता दिया, हो हमरे मेहमान ॥१५॥
ऊँचा कुल नीचा मता, नाहिं गुरू सौं हेत ।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥१६॥
ऊँचे कुल के कारने, भूला सब संसार ।
तब कुल की क्या लाज है, यह तन होवै छार ॥१७॥
हस्ती चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर ढुराय ।
लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥१८॥

---

* मज़बूत टाट के थैले । † सिर ऊँचा करके नमस्कार करै ।

जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय।
चेला को चेला मिलै, तब कछु होय तो होय ॥१९॥
बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय।
ज्यौं प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय* ॥२०॥
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय ॥२१॥

६–कपट का अंग

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता† मन स्वेत‡ ॥१॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त।
पूटा अवगुन घना, मुहँड़े ऊपर मित्त§ ॥२॥
चित कपटी सब सौं मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी, आगे पीछे और ॥३॥
हेत प्रीति सौं जो मिले, ता को मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिले, ता सौं मिलै बलाय ॥४॥
नवनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि।
पारधिया‖ दूना नवै, मिरगहिं टूकै जाहि ॥५॥

७–आशा का अंग

आसा जीवै जग मरै लोक मरै मन जाहि।
धन संचै सो भी मरै, उबरै सो धन खाहि ॥१॥

---

*शतरंज के खेल में जब प्यादा वज़ीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चल सकता है। †लाल; रंगीन। ‡सपेद। §पीठ पीछे बुराई करै और मुँह पर बड़ाई। ‖शिकारी।

आसा बेली कर्म बन, बाढ़त मन के साथ।
त्रिस्ना फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥२॥
जो तू चाहै मुज्झ को, राखो और न आस।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥३॥
आसा मनसा दुइ नदी, तहाँ न पग ठहराय।
इन दोनों को लाँघि कै, चौड़े बैठौ जाय ॥४॥
चौड़ा बैठा जाइ के, नाम धरा रनजीत।
साहेब न्यारा देखिया, अंतरगत की प्रीत ॥५॥
आस बास* जग फंदिया, रहा अरध लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥६॥
आसन मारे का भया, मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥७॥
कबीर जग को कहा कहूँ, भवजल बूड़े दास।
सतगुरु सम पति छोड़ि के, करै मनुष की आस ॥८॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, सो भी मरै पियास ॥९॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवारि।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपड़ की सार ॥१०॥
कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास ॥११॥
बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१२॥
आसा का ईंधन करूँ, मनसा करूँ भभूत।
जोगी फिरि फेरी करूँ, यों बनि आवै सूत ॥१३॥

* बासना।

८—तृष्णा का अंग

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१॥
त्रिस्ना केरि बिसेषता, कहँ लगि करौं बखान।
देंह मरै इंद्री मरै, त्रिस्ना मरै न निदान ॥२॥
की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निस दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥३॥
त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥४॥
नामहिं छोटा जानि कै, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, त्रिस्ना के आधीन ॥५॥

॥ नव रत्न वा सकारी अंग ॥

१—शील का अंग

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय ॥१॥
सीलवंत सब तें बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥२॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक ॥३॥
सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह।
सब्द बिना साधू नहीं, द्रब्य बिना नहिं साह ॥४॥
बिषय पियारे प्रीत सों, तब लग गुरुमुख नाहिं।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया सों रुचि नाहिं ॥५॥

सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरे जागि।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि ॥६॥
आव कहै सो औलिया, बैठु कहै सो पीर।
जा घर आव न बैठुहै, सो काफिर वेपीर ॥७॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवंत, बिरला होय तो होय ॥८॥

२—क्षमा का अंग

छिमा क्रोध को छय करै, जो काहू पै होय।
कहै कबीर ता दास को, गंजि न सक्कै कोय ॥१॥
छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा बिष्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥२॥
भली भली सब कोउ कहै, रही छिमा ठहराय।
कहै कबीर सीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय ॥३॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥४॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहै कबीर न उलटिये, वही एक की एक ॥५॥
गारी सों सब ऊपजै, कलह कष्ट अरु मीच।
हार चलै सो संत है, लागि मरै सो नीच ॥६॥
करगस* सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥७॥
चोट सुहेली सेल की, पड़ते लेय उसास।
चोट सहारै सब्द की, तासु गुरू मैं दास ॥८॥

---

* तीर।

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥९॥

३-संतोष का अंग

साध सँतोषी सर्बदा, निरमल जा के बैन।
ता के दरसन परस तें, जिय उपजै सुख चैन ॥१॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥२॥
माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिं ॥३॥
अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिं दोष।
उद्र समाना माँगि ले, निस्चय पावै मोष ॥४॥
उत्तम भिषि है अजगरी, सुनि लीजै निज बैन।
कह कबीर ता के गहे, महा परम सुख चैन ॥५॥
गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥६॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज ॥७॥

४-धीरज का अंग

धीरा होइ धमक* सहौ, ज्यों अहरन सिर घाव।
मेघा पर्बत ह्वै रहौ, इत उत कहूँ न जाव ॥१॥
धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥२॥

* चोट।

कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥३॥
कबीर तू काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़कर डोलिये, कूकर भुसै हजार ॥४॥
कबीर भँवर में बैठि कै, औचक मना न जोय।
डूबन का भय छाँड़ि दे, करता करै सो होय ॥५॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥६॥

५—दीनता का अंग

दीन गरीबी बंदगी, साधन सोँ आधीन।
ता के सँग मैं योँ रहूँ, ज्योँ पानी सँग मीन ॥१॥
दीन लखै सुख सबन को, दीनहिँ लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता, नरहुँ देवता होय ॥२॥
इक बानी जो दीनता, संतन कियो बिचार।
यही भेंट गुरुदेव की, सब कछु गुरु दरबार ॥३॥
दीन गरीबी बंदगी, सब से आदर भाव।
कहै कबीर तेई बड़ा, जा मैं बड़ा सुभाव ॥४॥
नहीं दीन नहिँ दीनता, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा किया, जीवत भया मसान ॥५॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥६॥
आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ मैं रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥७॥

ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै, ऊँचा प्यासा जाय ॥८॥
नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़े बोहित* अभिमान की, बूड़े ऊँच कुलीन ॥९॥
सब तेँ लघुताई भली, लघुता तेँ सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा, सीस नवै सब कोय ॥१०॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजोँ आपना, मुझसा बुरा न होय ॥११॥
कबीर सब तेँ हम बुरे, हम तेँ भल सब कोय।
जिन ऐसा कर बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥१२॥

६–दया का अंग

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ते नर नरकहिँ जाहिँगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥१॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदइ होय।
साँई के सब जीव हैं, कीड़ो कुंजर सोय ॥२॥
हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सब्द-सनेही होय ॥३॥
बैरागी ह्वै गेह तजि, पग पहिरै पैजार।
अंतर दया न ऊपजै, घनी सहैगा मार ॥४॥
दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय।
साँई के सब जीव हैं, कीरा कुंजर सोय ॥५॥

---

* नाव।

७-साँच का अंग

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप ॥१॥
साँई से साँचा रहौ, साँई साँच सुहाय।
भावै लम्बे केस रख, भावै घोट मुँडाय ॥२॥
साँचे स्राप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहिँ समाय ॥३॥
साँचै सौदा कीजिये, अपने जिव मेँ जानि।
साँचै हीरा पाइये, झूठै मूलहुँ हानि ॥४॥
जो तू साँचा बानिया, साँची हाट लगाय।
अंदर झाडू देइ कै, कूड़ा दूरि बहाय ॥५॥
तेरे अंदर साँच जो, बाहर कछु न बनाव।
जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव ॥६॥
जा की साँची सुरति है, ता का साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साँई सेती मेल ॥७॥
साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस मेँ परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय ॥८॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साँच ॥९॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर ॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना, पहरि कबीरा नाँच।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोइ बोलै साँच ॥११॥

साँच सब्द हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरे दास हजूर ॥१२॥
साधू ऐसा चाहिये, साँची कहै बनाय।
कै टूटै कै फिरि जुरै, कहे बिन भरम न जाय ॥१३॥
जिन नर साँच पिछानियाँ, करता केवल सार।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥१४॥
कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साँच।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यौं तू पकरै काँच ॥१५॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा साँच गहु, आवा गवन नसाय ॥१६॥
साँचे कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१७॥
साँच कहूँ तो मारि हैं, झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाय ॥१८॥
साँचे को साँचा मिलै, अधिका बढ़ै सनेह।
झूठे को साँचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥१९॥
जा के बोली बंध नहिं, साँच नहीं मन माहिं।
ता के संग न चालिये, छाँड़ै पैंड़े माहिं ॥२०॥
कबीर पूँजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥२१॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साँचा होय।
साँई के दरबार में, पला न पकरै कोय ॥२२॥
जो तेरे दिल साँच है, बाहर नाहिं जनाव।
जाननहारा जानही, अंतरगति का भाव ॥२३॥

साँच सुनै अरु सत कहै, सत्त नाम की आस ।
सत्त नाम को जान करि, जग से रहै उदास ॥२४॥
साँच हुआ तो क्या हुआ, जो नाम न साँचा जान ।
साँचा है साँचै मिलै, तब साँचै माहिँ समान ॥२५॥
साँचा सब्द कबीर का, हिरदय देख बिचारि ।
चित दै समझत है नहीं, मोहिं कहत भये जुग चारि ॥२६॥

८–बिचार का अंग

आगि कहे दाझै नहीं, पाँव न दीजै माहँ ।
जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह ॥१॥
कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाहिँ ।
आपा परे जब चीन्हिया, उलटि समाना माहिँ ॥२॥
पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार ।
नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥३॥
आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारा जाय ।
मनहिं प्रतीत न ऊपजै, राति दिवस भरि गाय ॥४॥
एक सब्द में सब कहा, सबही अर्थ बिचार ।
भजिये निर्गुन नाम को, तजिये बिषै बिकार ॥५॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल ।
हिये तराजू तोल के, तब मुख बाहर खोल ॥६॥
सहज तराजू आन करि, सब रस देखा तोल ।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जानै बोल ॥७॥
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल ।
हीरा तो दामों मिलै, सब्द का मोल न तोल ॥८॥

ज्यौँ आवै त्योँहीँ कहै, बोलै नाहिँ विचारि ।
हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥९॥
बोलै बोल विचारि कै, बैठै ठौर सँभारि ।
कहै कबीर वा दास की, कबहुँ न आवै हारि ॥१०॥
बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस ।
खारी सेँ मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥११॥
कबीर उलटे ज्ञान का, कैसे करूँ विचार ।
थिर बैठे मारग कटै, चला चली नहिँ पार ॥१२॥
जो कछु करै विचारि कै, पाप पुन्न तेँ न्यार ।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार ॥१३॥
आचारी सब जग मिला, विचारी मिला न कोय ।
कोटि अचारी वारिये, इक विचारि जो होय ॥१४॥

९-विवेक का अंग

फूटी आँखि विवेक की, लखै न संत असंत ।
जा के सँग दस बीस हैँ, ता का नाम महंत ॥१॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
सब्द विवेकी पारखी, सो माथे के मौर ॥२॥
जब लग नाहिँ विवेक मन, तब लग लगै न तीर ।
भवसागर नाहीँ तरै, सतगुरु कहैँ कबीर ॥३॥
गुरुपसु नरपसु नारिपसु, वेदपसू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ॥४॥
प्रगटै प्रेम विवेक दल, अभय निसान बजाय ।
उग्र ज्ञान उर आवताँ, यह सुनि मोह दुराय ॥५॥

कर बंदगी बिबेक की, भेष धरै सब कोय।
वा बँदगी बहि जानि दै, जहँ सब्द बिबेक न होय ॥६॥
कहै कबीर पुकारि कै, कोइ संत बिबेकी होय।
जा में सब्द बिबेक है, छत्र-धनी है सोय ॥७॥
जीव जंतु जलहर बसै, गये बिबेक जो भूल।
जल के जलचर योँ कहैं, हम उड़गन* समतूल ॥८॥
सत्तनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिँ बिबेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक ॥९॥
समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिबेक ॥१०॥

॥ बुद्धि और कुबुद्धि का अंग ॥

बुद्धि बिहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पर्‍यौ, नाचै घर घर बार† ॥१॥
बुद्धि बिहूना अंध गज, पर्‍यो फंद में आय।
ऐसे ही सब जग बँधा, कहा कहौं समझाय ॥२॥
पंख छता‡ परिबस पर्‍यो, सूवा के बुधि नाहिँ।
बुद्धि बिहूना आदमी, योँ बंधा जग माहिँ ॥३॥
बुद्धि बिहूना सिंह ज्यौं, गयो ससा के संग।
अपनी प्रतिमा देखि कै, कीन्ह्यौ तन को भंग ॥४॥
अकिल अरस सोँ ऊतरी, बिधना दीन्ही बाँटि।
एक अभागी रहि गया, एकन लीन्हो छाँटि ॥५॥
बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देँह।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेह ॥६॥

---

* तारा। † द्वार। ‡ आछत।

गुन गाड़ै औगुन खनै, जिभ्या कटुक कुदार ।
ऐसा मूरख दुर्जना, नरक जाय जम द्वार ॥७॥
समझा का घर और है, अनसमझा का और ।
जा घर में साहिब बसैं, बिरला जानै ठौर ॥८॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय ।
कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥९॥
कोइला भी होइ ऊजरो, जरि बरि होय जो स्वेत ।
मूरख होय न ऊजरो, ज्यों कालर* का खेत ॥१०॥
मूरख सों क्या बोलिये, सठ सों कहा बसाय ।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥११॥
पसुआ से पाला परा, रहि रहि हिये में खीज ।
ऊसर परा न नीपजै, भावै तेता बीज ॥१२॥
एक सब्द से सब कहै, गुरू सिष्य समझाय ।
समझाया समझै नहीं, फिरि फिरि पूछै आय ॥१३॥

॥ मन का अंग ॥

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक ।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥१॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोइ साध ।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध ॥२॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक होइ जाय ।
बिष की क्यारी बोइ के, लुनता क्यों पछिताय ॥३॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय ।
टूटे पीछे फिरि जुरै, बीच गाँठि परि जाय ॥४॥

---

* रेहार यानी रेह का ।

यह मन फटकि पिछोरि ले, सब आपा मिटि जाय ।
पिंगल होय पिउ पिउ करै, ता को काल न खाय ॥५॥
मन पाँचो के बसि परा, मन के बस नहिँ पाँच ।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच ॥६॥
कबीर बैरी सबल हैं, एक जीव ऋपु पाँच ।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाँच ॥७॥
कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय ।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥८॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिँ ।
कहै कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिँ ॥९॥
तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह ।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥१०॥
चोर भरोसे साहु के, लाया बस्तु चुराय ।
पहिले बाँधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥११॥
कबीर यह मन मसखरा, कहूँ तो मानै रोस ।
जा मारग साहिब मिलै, तहाँ न चालै कोस ॥१२॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर ।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥१३॥
समुँद लहर तो थोड़िया, मन लहरैं घनियाय ।
केती आइ समाइहै, केति जाइ बिसराय ॥१४॥
कबीर लहर समुद्र की, केती आवैं जाहिँ ।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै वाहिँ ॥१५॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लग मन की दौड़ ।
दौड़ थकी मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥१६॥

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात ।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१७॥
कबीर मन परबत हता, अब मैं पाया जानि ।
टाँकी लागी सब्द की, निकसी कंचन खानि ॥१८॥
अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परवेस ।
तन मन सबही छाँड़ि के, तब पहुँचै वा देस ॥१९॥
मनही को परमोधिये, मनही को उपदेस ।
जो यहि मन को बसि करै, (तो) सिष्य होय सब देस ॥२०॥
कबीर सीढ़ी साँकरी, चंचल मनुवाँ चोर ।
गुन गावै लौलीन ह्वै, मन में कछु इक और ॥२१॥
चंचल मनुवाँ चेत रे, सोवै कहा अजान ।
जमधर* जम ले जायगा, पड़ा रहैगा म्यान ॥२२॥
कबीर मन मैला भया, या में बहुत विकार ।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो विचार ॥२३॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार ।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥२४॥
मन गोरख मन गोविंदा, मनही औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥२५॥
पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नोन ।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥२६॥
मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय† ।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥२७॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु से मिलै, तौ गुरु मिलै निसंक ॥२८॥

* तलवार । † आग ।

कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ गिरै पताल।
कबहूँ मन उनमुनि लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२९॥
मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥३०॥
कोटि करम पल में करै, यह मन बिषया स्वाद।
सतगुरु सब्द न मानही, जनम गँवावै बाद ॥३१॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिं।
घनी सहैगा सासना, जम की दरगह माहिं ॥३२॥
कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग।
कह कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग ॥३३॥
इन पाँचो से बंधिकर, फिर फिर धरै सरीर।
जो यह पाँचो बसि करै, सोई लागै तीर* ॥३४॥
मनुवाँ तो पंछी भया, उड़ि के चला अकास।
ऊपर ही तें गिरि पड़ा, मन माया के पास ॥३५॥
मन पंछी जब लग उड़ै, बिषय बासना माहिँ।
प्रेम बाज की झपट में, तब लग आयो नाहिँ ॥३६॥
जहाँ बाज बासा करै, पंछी रहै न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नाहिँ करम को ठौर ॥३७॥
मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गँभीर।
दोहरी तेहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर ॥३८॥
अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, तो सरबस डारूँ वार ॥३९॥
कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुसियार ॥४०॥

---

* किनारे।

या तन में मन कहँ बसै, निकस जाय केहि ठौर ।
गुरु गम होय तो परखि ले, नहिं तो कर गुरु और ॥४१॥
नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर ।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥४२॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय ।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दर्सन होय ॥४३॥
हिरदे भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तौ तबहीं देखसी, दिल की दुबिधा जाय ॥४५॥
तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्जल होय ।
साहेब से सनमुख रहै, अजर अमर सो होय ॥४६॥
पानी हूँ तैं पातला, धूआँ हूँ तैं भीन ।
पवन हुँ तैं उतावला*, दोस्त कबीरा कीन ॥४७॥
मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमनि रहाय ।
बगुला मन मानै नहीं, घर आँगन फिरि जाय ॥४८॥
पुहुप बास तैं पातला, सूच्छम जा को रंग ।
कबीर ता सोँ मिलि रहा, कबहुँ न छोड़ै संग ॥४९॥
मन मनसा को मारि ले, घट ही माहीं घेर ।
जब ही चालै पीठि दै, आँकुस दै दै फेर ॥५०॥
मन मनसा को मार करि, नंन्हा करि के पीस ।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलक्कै सीस ॥५१॥
मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और ।
जब मन निसचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥५२॥
काया कजली बन अहै, मन कुंजर महमंत ।
आँकुस ज्ञान रतन्न का, फेरै बिरला संत ॥५३॥

---

* तेज़ ।

कबीर मनहि गजंद है, आँकुस दै दै राखु ।
बिष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥५४॥
काया देवल मन धुजा, बिषय लहरि फहराय ।
मन चालै देवल चलै, ता को सरवस जाय ॥५५॥
काया कसौ कमान ज्यौं, पाँच तत्त कर बान ॥
मारो तो मन मिरग को, नातरु मिथ्या जान ॥५६॥
सुर नर मुनि सब को ठगे, मनहिँ लिया अवतार ।
जो कोई या तेँ बचै, तीन लोक तेँ न्यार ॥५७॥
कुंभै बाँधा जल रहै: जल बिनु कुंभ न होय ।
ज्ञानै बाँधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥५८॥
मन माया तो एक है, माया मनहिँ समाय ।
तीन लोक संसय परी, काहि कहूँ समझाय ॥५९॥
मन माया की कोठरी, तन संसय को कोट ।
बिषहर मंत्र मानै नहीँ, काल सर्प की चोट ॥६०॥
मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहे अनेक ।
कहै कबीर ते बाचिहैं, जा के हृदय बिबेक ॥६१॥
नैनन आगे मन बसै, पल पल करै जो दौर ।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥६२॥
तन बोहित* मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय ।
कबहीं दरिया अगम बहि, कबहीं गगन समाय ॥६३॥

---

* नाव ।

॥ सोरठा ॥

मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै।
काहे की कुसलात, लै दीपक कूँए परै ॥६४॥
कबीर मन मरकट भया, नेक न कहुँ ठहराय।
सत्त नाम बाँधे बिना, जित भावै तित जाय ॥६५॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कहै कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत ॥६६॥
मन जो गया तो जानि दे, दृढ़ करि राखु सरीर।
बिना चढ़े कमान के, कैसे लागै तीर ॥६७॥
बिना सीस का मिरग है, चहुँ दिसि चरने जाय।
बाँधि लाव गुरु ज्ञान से, राखौ तत्त लगाय ॥६८॥
तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, बिषै बाज लिये हाथ ॥६९॥
मना मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होय।
पानी में घी नीकसै, सूखा खाय न कोय ॥७०॥
कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन।
कह कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहिला दिन ॥७१॥
मन नाहीं छाँड़ै बिषय, बिषय न मन को छाँड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि* ॥७२॥
अकथ कथा या मनहिं की, कह कबीर समझाय।
जा को येहि समझि परै, ता को काल न खाय ॥७३॥
मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार।
सूधा ह्वै मारग चला, गुरु आगे हम लार ॥७४॥

* अड़, हठ।

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुचि* पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥७५॥

॥ माया का अंग ॥

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥१॥
कबीर माया पापिनी, माँगी मिलै न हाथ।
मना उतारी झूठ करि, (तब) लागी डोलै साथ ॥२॥
माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥३॥
कबीर माया पापिनी, फँद लै बैठी हाट।
सब जग तौ फंदे परा, गया कबीरा काट ॥४॥
कबीर माया पापिनी, ताही लाये लोग।
पूरी किनहुँ न भोगिया, या का यही बियोग ॥५॥
कबीर माया बेसवा, दोनोँ की इक जाति।
आवत कौं आदर करै, जात न पूछै बाति ॥६॥
मोती उपजै सीप में, सीप समुन्दर जोय।
रंचक संचर रहिगया, ना कछु हुआ न होय ॥७॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भै, संचत नरक दुवार ॥८॥
खान खरचन बहु अंतरा, मन में देख बिचार।
एक खवाया साधु को, एक मिलाया छार ॥९॥
कबिरा माया जात है, सुनो सब्द निज मोर।
सखियौं† के घर संतजन, सूमों के घर चोर ॥१०॥

---

* सुचि=पवित्रता, निरमलता। † दाता।

संतोँ खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय।
कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलिहै आय ॥११॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जा को चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥१२॥
माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिँ।
सहस बरस की सब करै, मरै महूरत* माहिँ ॥१३॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१४॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान।
भागे हूँ छूटै नहीँ, भरि भरि मारै बान ॥१५॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड।
सतगुरु की क्रिरपा भई, नातर करती भाँड ॥१६॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि।
कोइ इक साधू ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि ॥१७॥
कबीर माया मोहिनी, भइ अँधियारी लोय।
जे सूता तेहि मूसि लै, रहे वस्तु को रोय ॥१८॥
माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय।
माया इन सब खाइया, माया कोइ न खाय ॥१९॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय।
दाँत उपाहूँ पापिनी, (जो) संतोँ नियरे जाय ॥२०॥
माया दासी संत की, ऊभी† देहि असीस।
बिलसी अरु लातोँ छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥२१॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय।
पीर पयम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥२२॥

---

* छिन। † हुलास के साथ।

झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय ।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥२३॥
माया आगे जीव सब, ठाढ़ रहैं कर जोरि ।
जिन सिरजा जल बुंद से, ता से बैठे तोरि ॥२४॥
माया के झक* जग जरै, कनक कामिनी लागि ।
कहै कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि ॥२५॥
मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी पिचास† ॥२६॥
कबीर माया सूम की, देखनहीं का लाड़ ।
जो वा में कौड़ी घटै, तौ हरि तोड़ै हाड़ ॥२७॥
या माया जग भरमिया, सब को लगी उपाध ।
यहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥२८॥
कबीर या संसार की, झूठी माया मोह ।
जेहि घर जेता बधावना, तेहि घर तेता द्रोह ॥२९॥
भूले थे यहँ आइ के, माया संग भुलाय ।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिलूँ तेहि जाय ॥३०॥
सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक ।
साधू ह्वै संग्रह करै, हारै हरि सा थोक‡ ॥३१॥
माया है दुइ भाँति की, देखी ठोंक बजाय ।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ॥३२॥
या माया है चूहड़ी§, औ चुहड़े की जोय ।
बाप पूत अरुझाय के, संग न केहु के होय ॥३३॥
माया के बस सब परे, ब्रह्मा बिस्नु महेस ।
नारद सारद सनक अरु, गौरी-पुत्र गनेस ॥३४॥

---

* जोश । † पिशाच, भूतिनी । ‡ जमा, माल । § भंगिन ।

आँधी आई ज्ञान की, ढहो भरम की भीति ।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति ॥३५॥
मीठा सब कोइ खात है, विष ह्वै लागै धाय ।
नीब न कोई पीवसी, सर्ब रोग मिटि जाय ॥३६॥
माया तरवर त्रिविधि का, साख विषय संताप ।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥३७॥
जिन को साँईं रँग दिया, कभी न होइँ कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥३८॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रम माहिँ परंत ।
कोई एक गुरु ज्ञान तेँ, उबरे साधू संत ॥३९॥

॥ कनक और कामिनी का अंग ॥

चलौँ चलौँ सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१॥
नारी की झाँईं परत, अंधा होत भुजंग ।
कबीर तिन की कौन गति, (जो) नित नारी के संग ॥२॥
कामिनि काली नागिनी, तीनौँ लोक मँझारि ।
नाम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि ॥३॥
कामिनि सुंदर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय ।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥४॥
एक नारी एक नागिनी, अपना जाया खाय ।
कबहूँ सरपट नीकसै, उपजै नाग बलाय ॥५॥
नैनौँ काजर पाइ कै, गाढ़े बाँधे केस ।
हाथौँ मिहँदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥६॥

पर नारी के राचने, सीधा नरकै जाय।
तिन को जम छाँड़े नहीं, कोटिन करै उपाय ॥७॥
पर नारी पैनी छुरी, मति कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥८॥
पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाचै कोय।
ना वहि पेट संचारिये, (जो) सर्ब सोन की होय ॥९॥
पर नारी का राचना, ज्यौं लहसुन की घ्रान*।
कोने बैठि के खाइये, परगट होय निदान ॥१०॥
पर नारी के राचने, औगुन है गुन नाहिँ।
खार समुंदर माछरी, केती बहि बहि जाहिँ ॥११॥
पर नारी पर सुंदरी, जैसे सूली साल।
नित कलेस भुगतै सही, तहू न छोड़ै खाल ॥१२॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतंग।
बढ़ी लहर जो बिषय की, जरत न मोड़ै अंग ॥१३॥
नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥१४॥
जहर पराया आपना, खाये से मरि जाय।
अपनी रच्छा ना करै, कह कबीर समझाय ॥१५॥
कूप पराया आपना, गिरै बूड़ि जो जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मत गोता खाय ॥१६॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय।
बहु बिधि कहूँ पुकारि कै, कर छूवो मत कोय ॥१७॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखेही तेँ बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१८॥

* दुर्गंध।

जो कबहूँ कै देखिये, बीर बहिन के भाय।
आठ पहर अलगा रहै, ता को काल न खाय ॥१९॥
सर्व सोने की सुंदरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठै पास ॥२०॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान मैं, पैठि न सक्कै कोय ॥२१॥
गाय रोय हँस खेल के, हरत सबन के प्रान।
कहै कबीर या घात को, समझैँ संत सुजान ॥२२॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ि मुवा संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥२३॥
गाय भैँस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास।
जा मंदिर मेँ यह बसैँ, तहाँ न कीजै बास ॥२४॥
नारि रचंते पुरुष हैँ, पुरुष रचंते नारि।
पुरुष पुरुष तैँ राचते, ते बिरले संसार ॥२५॥
नारि कहौँ की नाहरी, नख सिख सोँ यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥२६॥
भग भोगे भग ऊपजै, भग तैँ बचै न कोय।
कह कबीर भग तैँ बचैँ, भक्त कहावै सोय ॥२७॥
सेवक अपना करि लई, आज्ञा मेटै नाहिँ।
भग मंतर दै गुरु भई, सिष हो सबै कमाहिँ ॥२८॥
कबीर नारि की प्रीति सोँ, केते गये गड़ंत।
केते औरौ जाहिँगे, नरक हसंत हसंत ॥२९॥
फाटे* कानौँ बाघिनी, तीन लोक को खाय।
जीवत खाय कलेजरा, मुए नरक लै जाय ॥३०॥

* फटकारे हुए।

नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट ।
कोइ कोइ साधू ऊबरै, लै सतगुरु की ओट ॥३१॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचै जाय ।
मंजारी* ज्यौं बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय ॥३२॥
नारी नदिया सारिखी, बहै अपरबल पूर ।
साहेब से न्यारा रहै, अंत परै मुख धूर ॥३३॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लंबी तरवारि ।
चाले थे गुरु मिलन को, बीचहिँ लीन्हा मारि ॥३४॥
एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिन की झाल ।
देखतही तेँ परज्वलै, परसि करै पैमाल ॥३५॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फल लिया उपाय ।
देखतही तेँ बिष चढ़ै, चाखतही मरि जाय ॥३६॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।
गुरु बिच पारै अंतरा, जम देसी मुख धूर ॥३७॥
रज बीरज की कोठरी, ता पर साज्यो रूप ।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३८॥
जहाँ जराई सुंदरी, तू जनि जाय कबीर ।
उड़ि के भस्म जो लागसी, सूना होय सरीर ॥३९॥
नारी तौ हम भी करी, जाना नाहिँ बिचार ।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार ॥४०॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही बिष की बेल ।
बैरी मारै दाँव दै, यह मारै हँसि खेल ॥४१॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस ।
जा का डसा न फिरि जिये, मरिहै बिस्वा बीस ॥४२॥

* बिल्ली ।

नारी नदिया सारिखी, और जो प्रगटै काल ।
सब कालन तेँ बाचिहै, नारी जम का जाल ॥४३॥
दीपक झोला पवन का, नर का झोला नारि ।
साधू झोला सब्द का, बोलै नाहिँ बिचारि ॥४४॥
नारि पुरुष की इसतरी, पुरुष नारि का पूत ।
याही ज्ञान बिचारि कै, छाँड़ि चला अवधूत ॥४५॥
अबिनासी बिच धार तिन*, कुल कंचन अरु नार ।
जो कोइ इन तेँ बचि चलै, सोई उतरै पार ॥४६॥
नारि से नजरि न जोरिये, अंसहिँ खिस ह्वै जाय ।
जा के चित नारी बसै, चारि अंस लै जाय ॥४७॥

॥ सोरठा ॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै ।
कहा गँवावै देह, कारज कोई ना सरै ॥४८॥

॥ निद्रा का अंग ॥

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार ।
एक दिना है सोवना, लम्बे पैर पसार ॥१॥
कबीर सोया क्या करै, उठि न भजो भगवान ।
जमधर† जब लै जायँगे, पड़ा रहैगा म्यान ॥२॥
कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज ।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥३॥
कबीर सोया क्या करै, उट्ठि न रोवै दुक्ख ।
जा का बासा गोर‡ में, सो क्योँ सोवै सुक्ख ॥४॥

* तीन । † तलवार । ‡ क़बर ।

कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौंप ।
ये दम हीरा लाल है, गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥५॥
कबीर सोया क्या करै, काहे न देखै जाग ।
जा के सँग तैं बीछुरा, ताही के सँग लाग ॥६॥
नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा . जाग ।
और रसायन छाँड़ि कै, नाम रसायन लाग ॥७॥
सोया सो निस्फल गया, जागा सो फल लेय ।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥८॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये असरार ।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥९॥
सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप ।
यह तीनौं सोते भले, साकित सिंह और साँप ॥१०॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय ।
अंतर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥११॥
जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय ।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१२॥
कबीर खालिक़ जागता, और न जागै कोय ।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी सोय ॥१३॥

॥ निंदा का अंग ॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१॥
निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान ।
निर्मल तन मन सब करै, बकै आनही आन ॥२॥

निन्दक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि।
कबीर सतगुरु पाइया, निन्दक के परसादि ॥३॥
कबीर मेरे साधु की, निन्दा करो न कोइ।
जो पै चन्द्र कलंक है, तऊ उँजारा होय ॥४॥
जो कोइ निन्दै साधु को, संकट आवै सोइ।
नरक माहिँ जनमै मरै, मुक्ति न कबहूँ होइ ॥५॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥६॥
साता सायर* मैं फिरा, जंबु दीप दै पीठ।
निन्दा पराई ना करै, सो कोइ बिरला दीठ ॥७॥
दोष पराया देख करि, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जा का आदि न अंत ॥८॥
निन्दक एकहु मति मिलै, पापी मिलौ हजार।
इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥९॥

[अहार]

॥ स्वादिष्ट भोजन का अंग ॥

खट्टा मीठा चरपरा, जिह्वा सब रस लेय।
चोराँ कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥१॥
खट्टा मीठा देखि कै, रसना मेलै नीर।
जब लग मन पाको नहीं, काँचो निपट कथीर ॥२॥
अहार करै मन भावता, जिह्वा केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरै, को कहिहै परसाद ॥३॥

* समुद्र।

माखी गुड़ में गड़ रही, पंख रह्यो लपटाय।
तारी पीटै सिर धुनै, मीठे बोरी माय ॥४॥

॥ मांस अहार का अंग ॥

माँस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग।
ता की संगति मत करो, परत भजन में भंग ॥१॥
माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यौं मूरी का खेत ॥२॥
माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय ॥३॥
यह कूकर को खान है, मनुष दैंह क्यों खाय।
मुख में आमिख* मेलता, नरक परै सो जाय ॥४॥
बिष्टा† का चौका दिया, हाँड़ी सीझै हाड़।
छूत बरावै चाम की, ता का गुरु है राड़‡ ॥५॥
हनिया सोई हन्नसी, भावै जानि बिजान।
कर गहि चोटी तानसी, साहेब के दीवान ॥६॥
तिल भरि मछरी खाइके, कोटि गऊ दै दान।
कासी करवत लै मरै, तौ हू नरक निदान ॥७॥
बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात हैं, तिन का कौन हवाल ॥८॥
पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाहिं।
अपना गला कटाइ कै, भिस्त§ बसै क्यों नाहिं ॥९॥
मुरगी मुल्ला सों कहै, जिबह करत है मोहिं।
साहेब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं ॥१०॥

---

* माँस। † गोबर। ‡ कलह? § बिहिश्त=बैकुंठ।

काला मुँह कर करद[*] का, दिल से दुई निवार।
सबही सुरति सुभान[†] की, अहमक मुला[‡] न मार ॥११॥
गल गुस्सा को काटिये, मियाँ कहर को मार।
जो पाँचो बिस्मिल[§] करै, तो पावै दीदार ॥१२॥
दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह खून वह बंदगी, कहु क्यों खुसी खुदाय ॥१३॥
खुस खाना है खीचरी, माहिँ परा टुक नोन।
माँस पराया खाय कर, गला कटावै कौन ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जा का गर तुम काटि हौ, सो फिर काटि तुम्हार ॥१५॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिँ।
कहै कबीर दोनौं गये, लख चौरासी माहिँ ॥१६॥

॥ नशे का अंग ॥

गऊ जो बिष्ठा भच्छई, बिप्र तमाखू भंग।
सस्तर बाँधै दर्सनी[||], यह कलिजुग का रंग ॥१॥
कलिजुग काल पठाइया, भाँग तमाल[¶] अफीम।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्हीं की सीम[**] ॥२॥
भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ[††] और सराब।
कह कबीर इन को तजै, तब पावै दीदार ॥३॥
औगुन कहूँ सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष सोँ पसुआ करै, द्रव्य गाँठि को देय ॥४॥

---

[*] छुरी। [†] खुदा। [‡] मुल्ला। [§] ज़िबह, अधमुआ। [||] कनफटा साधू। [¶] तमाखू। [**] हद में। [††] अफ़ीम।

अमल अहारी आत्मा, कबहुँ न पावै पारि ।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागौ ताहि विचारि ॥५॥
मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय ।
तनमद मनमद, जातिमद, मायामद सब लोय ॥६॥
विद्यामद और गुनहुँ मद, राज मद्द उनमद्द ।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द ॥७॥
कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिँ ।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिँ ॥८॥

॥ स्वाद खान पान का अंग ॥

रूखा सूखा खाइ कै, ठंढा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥१॥
कबीर साँईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय ।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहूँ) रूखी छीनि न लेय ॥२॥
आधी अरु रूखी भली, सारी सोँ संताप ।
जो चाहैगा चूपड़ी, (तो) बहुत करैगा पाप ॥३॥
अन पानी आहार है, स्वाद संग नहिँ खाय ।
जो चाहै दीदार को, (तो) चुपड़ी चखै बलाय ॥४॥

॥ आनदेव की पूजा का अंग ॥

सौ बरसाँ भक्ती करै, इक दिन पूजै आन ।
सो अपराधी आत्मा, परै चौरासी खान ॥१॥
सत्त नाम को छाँड़ि कै, करै आन को जाप ।
ता के मुहड़े दीजिये, नौसादर को बाप* ॥२॥

* विष्टा ।

सत्त नाम को छाँड़ि कै, करै और को जाप ।
बेस्या केरे पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप ॥३॥
सत्त नाम को छाँड़ि कै, करै अन्य की आस ।
कह कबीर ता दास का, होय नरक में बास ॥४॥
कामी तरै क्रोधी तरै, लोभी तरै अनंत ।
आन उपासी कृतघ्नी, तरै न गुरू कहंत ॥५॥
देवी देव मानै सबै, अलख न मानै कोय ।
जा अलक्ख का सब किया, ता सोँ बेमुख होय ॥६॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥७॥

॥ मूरत पूजा का अंग ॥

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार ।
वाहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥१॥
काजर केरी कोठरी, मसि के किये कपाट ।
पाहन भूली पिरथवी, पंडित पारी बाट ॥२॥
पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब ।
अंधा नर आसामुखी, योंहीं होय खराब ॥३॥
हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ ।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर का बोझ ॥४॥
पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार ।
ता तें यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥५॥
मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस ।
मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिस्वा बीस ॥६॥

पाथर ही का देहरा, पाथर ही का देव।
पूजनहारा आँधरा, क्योंकरि मानै सेव ॥७॥
पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी वाद।
सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद ॥८॥
पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माहिँ।
पिंड फूटि परबस रहै, सो लै तारै काहि ॥९॥
कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।
कहै कबीर बिचारि कै, सब बूड़ा संसार ॥१०॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि बसैं, तू ताही लौ लाय ॥११॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान ॥१२॥
काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१३॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जेहि कारन तू बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय ॥१४॥
तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय ॥१५॥
पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लग पिउ परसै नहीं, तब लग संसय मेल ॥१६॥
कबीर या संसार को, समझायौ सौ बार।
पूँछ तो पकड़े भेड़ की, उतरा चाहै पार ॥१७॥

॥ तीर्थ व्रत का अंग ॥

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ व्रत बिस्वास ।
सूआ सैंभल सेइ कै, फिर उड़ि चला निरास ॥१॥
तीरथ व्रत विष बेलरी, सब जग राखा छाय ।
कबिरा मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥२॥
तीरथ व्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय ।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥३॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न उतरिया, मन दस लाये और ॥४॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥५॥
निर्मल गुरु के नाम सौं, कै निर्मल साधू भाय ।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम ।
जब लग साध न सेइहै, तब लग काँचा काम ॥७॥
मन में तो फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म ।
कोटि करम सिर पर चढ़ै, चेत न देखै मर्म ॥८॥
और धरम सब करम हैं, भक्ति धरम निःकर्म ।
नदिया हत्यारी अहै, कुवा बावरी भर्म ॥९॥
कर्म हमारे काटिहै, कोइ गुरुमुख कलि माहिँ ।
कहै हमारी बासना, सो गुरुमुख कहियत नाहिँ ॥१०॥
बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुतै आस ।
काहू के गज होहिँगे, खइहैं सेर पचास ॥११॥

॥ पंडित और संस्कृत का अंग ॥

संस्कृतहिं पंडित कहै, बहुत करै अभिमान ।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥१॥
संस्किरत संसार में, पंडित करै बखान ।
भाषा भक्ति दृढ़ावही, न्यारा पद निरबान ॥२॥
संस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर ।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥३॥
पूरन बानी बेद की, सोहत परम अनूप ।
आधी भाषा नेत्र बिन, के लखि पावै रूप ॥४॥
बानी तो पानी भरै, चारो बेद मजूर ।
करनी तो गारा करै, रहनी का घर दूर ॥५॥
बेद कहै जानैं न कछु, स्वाँसा के सँग आय ।
दरस हेतु करूँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥६॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥७॥
पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईंट ।
कबीर अन्तर प्रेम की, लगी न एकौ छींट ॥८॥
पंडित पोथी बाँधि के, दे सिरहाने सोय ।
वह अच्छर इन में नहीं, हँसि दे भावै रोय ॥९॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्योँ तीतर को ज्ञान ।
औरन सगुन बतावहीं, अपना फंद न जान ॥१०॥
पढ़े गुने सीखे सुने, मिटो न संसय सूल ।
कह कबीर का सोँ कहूँ, येही दुख का मूल ॥११॥
कबीर पढ़ना दूर कर, पुस्तक देहु बहाय ।
बावन अच्छर सोधि के, सत्त नाम लौ लाय ॥१२॥

पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहल ।
काम दहन मन वसि करन, गगन चढ़न मुसकिल ॥१३॥
पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं ।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥१४॥
नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अच्छर है सोय ।
पाँचहि पुस्तक छाँड़ि कै, पंडित कहिये सोय ॥१५॥
धरती अम्बर ना हता, कौन था पंडित पास ।
कौन महूरत थापिया, चाँद सूर आकास ॥१६॥
पंडित वोरो पत्तरा, काजी छाँड़ कुरान ।
वह तारीख वताइदे, थे न जमीं असमान ॥१७॥
वाम्हन गुरु है जगत का, करम भरम का खाहि ।
उरझि पुरझि के मरि गया, चारो वेदों माहिं ॥१८॥
वाम्हन गदहा जगत का, तीरथ लादा जाय ।
जजमान कहै मैं पुन किया, वह मिहनत का खाय ॥१९॥
वाम्हन तैं गदहा भला, आन देव तैं कुत्ता ।
मुलना तैं मुरगा भला, सहर जगावै सुत्ता ॥२०॥
कवीर वाम्हन की कथा, सो चोरन की नाव ।
सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ लेजाव ॥२१॥
कवीर वाम्हन बूड़िया, जनेऊ केरे जोरि ।
लख चौरासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोरि ॥२२॥
कलि का वाम्हन मसूखरा, ताहि न दीजै दान ।
कुटुँब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान ॥२३॥

॥ मिश्रित का अंग ॥

साँईं केरे बहुत गुन, लिखे जो हिरदे माहिँ ।
पिऊँ न पानी डरपता, मत वै धोये जाहिँ ॥१॥
सुपने में साँईं मिले, सोवत लिया जगाय ।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सुपना ह्वै जाय ॥२॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिँ ।
लोचन राते सुभ घड़ी, बिसरत कबहूँ नाहिँ ॥३॥
कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
हिलि मिलि कै सँग खेलई, कधी बिछोह न होय ॥४॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय ।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कूँ पाँय ॥५॥
तरवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करंत ॥६॥
तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेँह ।
परमारथ के कारने, चारौ धारैं देँह ॥७॥
कबीर सोई पीर है, जो जानै पर पीर ।
जो परपीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥८॥
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान ।
ये तीनोँ बहुतै नवैँ, चीता चोर कमान ॥९॥
कबीर सुख को जाय था, आगे मिलिया दुक्ख ।
जाहु सुक्ख घर आपने, हम जानैँ अरु दुक्ख ॥१०॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिँ लेय ।
पानी पावै स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥११॥

ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर ।
कै सुरपति* को याँचई, कै दुख सहै सरीर ॥१२॥
पड़ा पपीहा सुरसरी†, लगा बधिक का बान ।
मुख मूँदे सुत गगन मैं, निकस गये यों प्रान ॥१३॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज ।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥१४॥
चात्रिक‡ सुतहिं पढ़ावही, आन नीर मत लेय ।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाँति बूँद चित देय ॥१५॥
जा के हिरदे गुरु बसैं, सो जन कल्पै काहि ।
एकै लहरि समुद्र की, दुख दरिद्र सब जाहि ॥१६॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै, तासोँ मिलिये धाय ।
अंतर राखे जो मिलै, तासोँ मिलै बलाय ॥१७॥
हाथी अटका कीच मैं, काढ़ै कोइ समरत्थ ।
कै निकसे बल आपने, कै धनी पसारै हत्थ ॥१८॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत ।
कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥१९॥
काँसे ऊपर बीजुली, परै अचानक आय ।
ता तैं निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय ॥२०॥
लम्बा मारग दूर घर, बिकट पंथ बहु मार ।
कह कबीर कस पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥२१॥
कबीर मैं तो बैठि कै, सब से कहूँ पुकारि ।
धरा§ धरै सो धरि कुटै, अधर धरै सो तारि ॥२२॥
हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हेराय ।
बुन्द समानी समुँद मैं, सो कित हेरी जाय ॥२३॥

---

* इन्द्र । † गंगा । ‡ पपीहा । § पृथ्वी ।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हेराय।
समुँद समाना बुन्द मेँ, सो कित हेरा जाय ॥२४॥
बुंद समानी समुँद मेँ, सो जानै सब कोय।
समुँद समाना बुन्द मेँ, जानै बिरला कोय ॥२५॥
एक समाना सकल मेँ, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ मेँ, जहाँ दूसरा नाहिँ ॥२६॥
गुरू नहीँ चेला नहीँ, नहिँ मुरीद नहिँ पीर।
एक नहीँ दूजा नहीँ, बिलसै तहाँ कबीर ॥२७॥
बृच्छ जो ढूँढ़ै बीज को, बीज बृच्छ के माहिँ।
जीव जो ढूँढ़ै पीव को, पीव जीव के माहिँ ॥२८॥
आदि होत सब आप मेँ, सकल होत ता माहिँ।
ज्योँ तरवर के बीज मेँ, डार पात फल छाँहिँ ॥२९॥
खुलि खेलो संसार मेँ, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय ॥३०॥
घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा* लेय।
सत्तनाम जाने बिना, उलटि नरक मेँ देय ॥३१॥
जब का माई जनमिया, कितहुँ न पाया सुक्ख।
डारी डारी मैँ फिरौँ, पात पात मेँ दुक्ख ॥३२॥
कबीर मैँ तो तब डरौँ, जो मुझही मेँ होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू मेँ सोय ॥३३॥
सात दीप नौखंड मेँ, तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सब को लगै, देँह धरे का दंड ॥३४॥

---

* तलाशी।

देँह धरे का दंड है, सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥३५॥
एक बस्तु के नाम बहु, लीजै बस्तु पिछानि ।
नाम पच्छ नहिँ कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥३६॥
सब काहू का लीजिये, साँचा सव्द निहार ।
पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर बिचार ॥३७॥
देखन ही की बात है, कहने की कछु नाहिँ ।
आदि अंत को मिलि रहा, हरिजन हरि ही माहिँ ॥३८॥
सबै हमारे एक हैं, जो सुमिरै सत नाम ।
बस्तु लही पहिचानि कै, बासन सोँ क्या काम ॥३९॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछिताये होत का, चिरियाँ चुग गईँ खेत ॥४०॥
कबीर दर दीवान जो, क्योँकर पावै दाद ।
पहिले बुरा कमाइ कै, पाछे करै फरियाद ॥४१॥
कौन कसै कौन कसावै, कौन जो लेइ छुड़ाय ।
यह संसा जिव ह्वै रही, साधु कहौ समझाय ॥४२॥
काल कसै कर्म कसावै, सतगुरु लेइ छुड़ाय ।
कहै कबीर बिचारि कै, सुनौ संत चित लाय ॥४३॥
माटी मेँ माटी मिली, मिली पौन सोँ पौन ।
मैँ तोहि बूझौँ पंडिता, दो मेँ मूवा कौन ॥४४॥
कुमति हती सो मिटि गई, मिट्यो बाद हंकार ।
दूनोँ का भेला मुवा, कहै कबीर बिचार ॥४५॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नार ।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवार ॥४६॥

करता दीखै कीरतन, ऊँचा करिके तुंड ।
जानै बूझै कछु नहीं, योँ ही आधा रुंड ॥४८॥
मो मैं इतनी सक्ति कहँ, गाम्रौं गला पसार ।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥४९॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय ।
दिल मंदिर में पैठ करि, तानि पिछौरा सोय ॥५०॥
सब से भली मधूकरी, भाँति भाँति का नाज ।
दावा काहू का नहीं, बिना बिलायत राज ॥५१॥
भौसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधे धीर ।
सब्द-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर ॥५२॥
हंसा बगला एक रँग, मानसरोवर माहिं ।
बगला ढूँढ़ै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥५३॥
तन संदूख मन रतन है, चुपके दे हठ ताल ।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी सब्द रसाल ॥५४॥
हीरा गुरु का सब्द है, हिरदे भीतर देख ।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख ॥५५॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत ।
सतगुरु सब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥५६॥
येहि उदर के कारने, जग याच्यो निसि जाम ।
स्वामीपन सिर पर चढ़्यौ, सर्‌यौ न एकौ काम ॥५७॥
परतिष्ठा का टोकरा, लीये डोलै साध ।
सत्त नाम जाना नहीं, जनम गँवाया बाद ॥५८॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहा बँधाय ।
रुपया देवै ब्याज पर, लेखा करत दिन जाय ॥५९॥

कलि का स्वामी लोभिया, पीतरि धरै खटाइ ।
राज दुवारे योँ फिरै, ज्यौं हरियाई गाइ ॥५९॥
राज दुवारे साधुजन, तीनि वस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥६०॥
कबीर कलिजुग कठिन है, साधु न मानै कोय ।
कामी क्रोधी मसूखरा, तिन कौ आदर होय ॥६१॥
सतगुरु की साँची कथा, कोई सुनई कान ।
कलिजुग पूजा डिम्भ की, बाजारी कौ मान ॥६२॥
देखन को सब कोइ भला, जैसा सीत का कोट ।
देखत ही ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिँ पोट ॥६३॥
पद गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द ।
तत्त मूल नहिँ जानिया, गल मेँ परिगा फंद ॥६४॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीँ गुरु सोँ हेत ।
कह कबीर क्योँ नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥६५॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिँ पदहिँ समाय ।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥६६॥
ब्रह्महिँ तेँ जग ऊपजा, कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु, जगत न त्यागन जोग ॥६७॥
ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिँ ता को त्याग ।
जगत ब्रह्म मेँ लीन है, कहहु कैान बैराग ॥६८॥
नेत नेत जेहिँ बेद कहि, जहाँ न मन ठहराय ।
मन बानी की गमि नहीं, ब्रह्म कहा किन आय ॥६९॥
एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत ।
एक कर्म है भूँजना, उदय न अंकुर सूत ॥७०॥

चाँद सुरज निज किरनि को, त्याग कवन विधि कीन ।
जा की किरनी ताहि मैं, उपजि होत पुनि लीन ॥७१॥
जब दिल मिला दयाल सोँ, फाँसी परी बिलाय ।
मोहिँ भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥७२॥
जब दिल मिला दयाल सोँ, तब कछु अंतर नाहिँ ।
पाला गलि पानी भया, योँ हरिजन हरि माहिँ ॥७३॥
कबीर मोह पिनाक* जग, गुरु बिनु टूटत नाहिँ ।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गुरुआहि ॥७४॥
साधू ऐसा चाहिये, ज्याँ मोती मैं आब ।
उतरे तेँ फिरि नहिँ चढ़ै, अनादर होय रहाब ॥७५॥
मूरख लघु को गुरु कहैं, लघु गुरु कहैं बनाय ।
यह अबिचारी देखि कै, कहत कबीर लजाय ॥७६॥
कबीर निगुरे नरन कैा, संसय कबहुँ न जाय ।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँडाय† ॥७७॥
कबीर जो गुरु-बेमुखी, (तेहि) ठौर न तीनिउँ लोक ।
चौरासी भरमत फिरै, भोगै नाना सोक ॥७८॥
गुरू झरोखे बैठि के, सब का मुजरा लेइ ।
जैसी जा की चाकरी, तैसा ता को देइ ॥७९॥
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिँ ।
सेँत मेँत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिँ ॥८०॥

---

*धनुष । † ठगाय ।
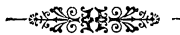
वह दूसरे छापे में दूर कर दिये जावें और जो दुर्लभ ग्रंथ संतबानी के उनको मिलें उन्हें भेज कर इस परोपकार के काम में सहायता करें।

यद्यपि ऊपर लिखे हुए कारनों से इन पुस्तकों के छापने में बहुत ख़र्च होता है तौ भी सर्व साधारन के उपकार हेतु दाम आध आना फ़ी आठ पृष्ठ से अधिक किसी का नहीं रक्खा गया है। जो लोग सबस्क्राइबर अर्थात पक्के गाहक होकर कुछ पेशगी जमा कर देंगे जिस की तादाद दो रुपये से कम न हो उन्हें एक चौथाई कम दाम पर जो पुस्तकें आगे छपेंगी बिना माँगे भेज दी जायँगी यानी रुपये में चार आना छोड़ दिया जायगा परंतु डाक महसूल उन के ज़िम्मे होगा और पेशगी दाम न देने की हालत में वी० पी० कमिशन भी उन्हें देना पड़ेगा। जो पुस्तकें अब तक छप गई हैं (जिन के नाम आगे लिखे हैं) सब एक साथ लेने से भी पक्के गाहकों के लिये दाम में एक चौथाई की कमी कर दी जायगी पर डाक महसूल और वी० पी० कमिशन लिया जायगा।

अब धनी धरमदास जी और मलूकदास जी व बिहारवाले दरिया साहेब की शब्दावलियाँ हाथ में ली गई हैं॥

प्रोप्रैटर, बेलवेडियर छापाख़ाना,

जनवरी, १९१२ ई० इलाहाबाद।

फ़िहरिस्त छपी हुई पुस्तकों की

तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... २)
,, ,, रत्न सागर मय जीवन-चरित्र .. ।।।=)
,, ,, घट रामायन दो भागों में, मय जीवन-चरित्र के,
पहिला भाग ... ... १)
,, ,, दूसरा भाग ... ... १)
ग़रीबदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।।।=)
कबीर साहेब का साखी-संग्रह (२१५२ साखियाँ) ... ... ।।।)।।

कबीर साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ दूसरा एडिशन ... ॥)
„ „ शब्दावली भाग २ ... ... ॥=)
„ „ ज्ञान-गुदड़ी व रेख़ते ... ... =)
„ „ अखरावती ... ... -)
पलटू साहेब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-
चरित्र, भाग १ ... ... ॥)
पलटू साहेब की शब्दावली, भाग २ ... ... ।-)
चरनदासजी की बानी और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ... ॥)
„ „ भाग २ ... ... ।=)
रैदासजी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।-)
जगजीवन साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ॥-)
„ „ शब्दावली भाग २ ... ... ॥-)
दरिया साहेब (बिहार वाले) का दरियासागर और जीवन-चरित्र ।-)
दरिया साहेब (मारवाड़ वाले) की बानी और जीवन-चरित्र ... ।)॥
भीखा साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... ।=)
गुलाल साहेब (भीखा साहब के गुरू) की बानी और जीवन-चरित्र ॥-)॥
मीरा बाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... ।-)
सहजो बाई की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।)
दया बाई की बानी और जीवन-चरित्र ... ... =)॥
गुसाँईं तुलसीदासजी की बारहमासी ... ...)॥
यारी साहेब की रत्नावली और जीवन-चरित्र ... ... -)॥
बुल्ला साहेब का शब्दसार और जीवन-चरित्र ... ... =)॥
केशवदासजी की अमीघूंट और जीवन-चरित्र ... ... -)
धरनीदासजी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।)
अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र अँग्रेज़ी पद्य में ... ... =)

मूल्य में डाक महसूल व वाल्यू पेएबल कमिशन शामिल नहीं है।

मनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद